Con. 3. 4.14.47
750

अंक 4

संख्या 14

बृहस्पतिवार,
31 जुलाई,
सन् 1947 ई.

भारतीय विधान-परिषद

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. नियमों में संधोधन ...2
2. यूनियन कांस्टीट्यूशन पर रिपोर्ट ...4
3. अध्यक्ष द्वारा घोषणा ...54

भारतीय विधान-परिषद्

बृहस्पतिवार, 31 जुलाई सन् 1947 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक दिन के 10 बजे कांस्टीट्यूशन हाल नई दिल्ली में माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में हुई।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि ऐसा कोई सदस्य नहीं है जो आज अपना आसन ग्रहण करने को हो। हम कार्यक्रम शुरू करेंगे।

कार्य-सूची की पहली मद में श्री देशबन्धु गुप्त का प्रस्ताव है, जो विधान-परिषद् में दिल्ली और अजमेर-मेरवाड़ा के प्रतिनिधित्व से सम्बन्धित नियम 5 में संशोधन करने के विषय में है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रांत और बरार: जनरल): पंद्रह अगस्त के सत्ता हस्तांतरण समारोह के सम्बन्ध में क्या मैं निवेदन कर सकता हूं कि सर्व-सत्ता-युक्त विधान-परिषद् के सभापति के रूप में आपके मान-प्रतिष्ठा के ख्याल से यह आवश्यक है कि कम से कम जहां तक इस सभा में उक्त समारोह के कार्यक्रम का सम्बन्ध है वह, अधिकारियों के किसी प्रकार के हस्तक्षेप या हुक्म शाही के बिना केवल आपके ही द्वारा तय तथा पूर्णतया निश्चित किया जाना चाहिये। मुझे विश्वास है कि इस विषय में आपका आश्वासन पाने से यह सभा आपकी बहुत कृतज्ञ होगी।

श्रीमान्, मैं आपसे विनती करूंगा कि कार्यक्रम निश्चित करते समय आप उसमें हमारा परम्परागत राष्ट्रीय गीत ''वन्देमातरम्'' तथा हमारे महान् योद्धा, राजनीतिज्ञ नेताजी सुभाषचन्द्र बोस द्वारा लोकप्रिय किया हुआ वह दूसरा सुन्दर गीत भी शामिल रखें। यह वही गीत है जो इन शब्दों से आरम्भ होता है।

''शुभ सुख चैन की वरषा बरसे, भारत भाग है जागा!''

(Shubh sukh chain ki varsha barse, Bharata bhag hai jaga)

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री एच.वी. कामत]

इसके अतिरिक्त श्रीमान्, मुझे, आपको उस प्रार्थना का भी स्मरण दिलाने की अनुमति दें जो मैंने विधान-परिषद् के प्रत्येक सदस्य को राष्ट्रीय झंडा भेंट किये जाने के सम्बन्ध में आपसे सोमवार को की थी। एक प्रकार से हम 15 अगस्त से पहले झंडा प्राप्त करने के लिये उत्सुक हैं। मैं यह आशा करने का साहस करता हूं कि स्टीयरिंग कमेटी मार्ग में बाधक न होगी और इस प्रस्ताव पर कोई आपत्ति न उठायेगी।

***अध्यक्ष:** सभा को तथा माननीय सदस्य श्री कामठ को मैं सूचित करना चाहता हूं कि कार्यक्रम के सम्बन्ध में मेरा विचार आज की बैठक समाप्त होने के समय एक वक्तव्य देने का है। किन्हीं बाहरी अधिकारियों का हुकम चलने का कोई प्रश्न नहीं है। हम अपना कार्यक्रम स्वयं निश्चित करेंगे। *(हर्ष-ध्वनि)* 15 अगस्त के प्रबन्ध के सम्बन्ध में मेरे दिमाग में कुछ बातें हैं, जिन पर मैंने पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा कुछ अन्य मित्रों के साथ विचार किया है। आज की बैठक विसर्जित होने से पहले, मैं इन विचारों को सभा के सामने रखूंगा।

नियमों में संशोधन

श्री देशबन्धु गुप्त (दिल्ली): सभापति महोदय, जो मोशन मेरे नाम में है, वह इस प्रकार है। प्रस्ताव यह है कि:

''(1) विधान-परिषद् के नियमों के नियम 5 (संशोधित) के उपनियम (2) में ''जैसी भी दशा हो'' शब्दों के बाद आने वाले ''दिल्ली और अजमेर-मेरवाड़ा की परामर्शदातृ कौंसिलें'' शब्द निकाल दिये जायें।

(2) नियम 5 (संशोधित) के उपनियम 12 की जगह निम्नलिखित रखा जाये:

'यदि विधान-परिषद् में दिल्ली या अजमेर-मेरवाड़ा का प्रतिनिधित्व करने वाले किसी सदस्य का स्थान मृत्यु, पदत्याग या अन्य किसी प्रकार रिक्त हो जाये तो अध्यक्ष इस रिक्त स्थान के बारे में विज्ञापन निकालेंगे और दिल्ली या अजमेर-मेरवाड़ा के चीफ कमिश्नर को जैसी भी दशा हो, आदेश देंगे कि वह रिक्त स्थान की पूर्ति के उद्देश्य से उपनिर्वाचन करने के लिये कार्यवाही करे।

यह उपनिर्वाचन यथासम्भव भारतीय लेजिस्लेटिव असेम्बली के दिल्ली या अजमेर-मेरवाड़ा, जैसी भी दशा हो, के निर्वाचन-क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य के चुनाव के लिये लेजिस्लेटिव असेम्बली के निर्वाचन सम्बन्धी नियमों द्वारा निर्धारित प्रणाली के अनुसार किया जायेगा'।''

इस सम्बन्ध में मुझे इतना ही कहना है कि श्री सन्तानम् ने जो पिछली मर्तबा अपनी तरमीम से अमेंडमेंट कराया था उसका अर्थ यह होता है कि कैजुअल वैकेन्सी की सूरत में देहली और अजमेर-मेरवाड़ा की सूरत में इस वैकेन्सी को पूरा करें। एडवाइजरी कौंसिल के चन्द मेम्बरान जिनकी संख्या सात से अधिक नहीं है वह इस वैकेन्सी को पूरा करें। इस पर कुदरती तौर पर देहली की तरफ से और अजमेर-मेरवाड़ा की तरफ से यह ऐतराज किया गया है कि चूंकि एडवाइजरी कौंसिल इस प्रकार से नहीं चुनेगी जिस प्रकार से सूबों की लेजिस्लेटिव कौंसिल चुनी गई है, बल्कि यह इन्डाइरेक्ट इलेक्शन से बहुत छोटी-सी बाडी बनाई गई है।

इसके अधिकार परिमित हैं, इसलिये एडवाइजरी कौंसिल के चन्द मेम्बरान को यह अधिकार देना कि कैजुअल वैकेन्सी की सूरत में वह तमाम मेम्बरान को चुन कर भेज दें, यह मुनासिब नहीं है। अगर गौर से देखा जाये तो सात मेम्बरान से तीन नौन-औफिसियल मेम्बर रह जाते हैं जिनके सुपुर्द चुनने का काम होगा। देहली का जहां तक ताल्लुक है, देहली में एडवाइजरी कौंसिल का चुनाव म्युनिसिपैलिटी के एलैक्टैड मेम्बरान से किया गया है, और नई देहली की जहां कि बड़ी म्युनिसिपैलिटी है, इसके कुछ मेम्बरान नौमीनेटेड मेम्बरान थे।

इसलिये इसके तमाम मेम्बरान इस चुनाव में हिस्सा नहीं लेते थे। यह भी ऐतराज है कि अगर एडवाइजरी कौंसिल पर यह चुनाव छोड़ा जाये तो उसका यह असर होगा कि नई देहली के तीन लाख आदमियों को डिस्फ्रेंचाइज कर दिया जायेगा। ऐसा होने की इस समय कोई आशा नहीं थी। इस ख्याल से कि यहां पर कोई लेजिस्लेटिव कौंसिल नहीं है यह समझ लिया गया था कि एडवाइजरी कौंसिल ऐसी सूरत पैदा होने पर इसे पूरा कर सकेगी। लेकिन लोगों को इसके खिलाफ यह जायज़ शिकायत है कि ऐसा करना डेमोक्रेटिक उसूलों के खिलाफ होगा। इस दृष्टि से यह तजवीज की गई है कि इस रूल को बदल दिया जाये और इस वेकेन्सी की सूरत में इसको इस तरह पूरा किया जाये जिस सूरत में औरिजिनली देहली की एलेक्शन हुई थी। देहली के मैम्बरान की हैसियत दूसरे मेम्बरान से इसलिये भी मुख्तलिफ है कि जहां और प्रान्तों से मेम्बर चुनकर आते

[श्री देशबन्धु गुप्त]

हैं वहां की लेजिस्लेटिव असेम्बली की जानिब से देहली और अजमेर-मेरवाड़ा के प्रतिनिधि डाइरेक्ट वोट से चुनकर आते हैं। इसलिये उसूलन यह सही होगा कि जिस-जिस प्रकार से औरिजिनल इलेक्शन हो उसी प्रकार से बाई इलेक्शन हो। इस तरह से यह मोशन मैंने पेश किया है। मैं समझता हूं कि स्टीयरिंग कमेटी ने भी इसे मंजूर किया है, और आपको भी इस पर कोई ऐतराज नहीं होगा।

***अध्यक्ष:** इस संशोधन के सम्बन्ध में क्या किसी सदस्य को कुछ कहना है?

(कोई भी सदस्य बोलने के लिये नहीं उठा।)

मैं मान लेता हूं कि इस सम्बन्ध में कोई भी सदस्य कुछ कहना नहीं चाहता। अब मैं संशोधन पर मत लूंगा।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

यूनियन कांस्टीट्यूशन पर रिपोर्ट

***अध्यक्ष:** अब हम यूनियन कांस्टीट्यूशन कमेटी की रिपोर्ट के शेष वाक्यांश (क्लाजेज) विचार के लिये लेते हैं। क्या हम भाग 10 पर विचार करेंगे—सर गोपालस्वामी आयंगर?

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर** (मद्रास: जनरल): श्रीमान्, आपके विचारार्थ क्या मैं यह तजवीज रख सकता हूं कि शायद हमें पहले उन वाक्यांशों को लेना चाहिये जो विचार करने के लिये छोड़ दिये गये थे।

***अध्यक्ष:** आपकी तजवीज है कि अब हम वाक्यांश 7 तथा 14 पर विचार करें। मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर:** वाक्यांश 7 को मैं पहले ही विचारार्थ उपस्थित कर चुका हूं। अब आप उन सदस्यों से, जिन्होंने इस वाक्यांश पर संशोधन के प्रस्ताव रखने की सूचना दी है, अपने प्रस्ताव विचारार्थ उपस्थित करने का आदेश दे सकते हैं।

वाक्यांश—7

***अध्यक्ष:** पहला वाक्यांश 7 है। वाक्यांश 7 के सम्बन्ध में कई संशोधन थे। हम इन संशोधनों पर विचार करेंगे; या ऐसा भी कोई संशोधन है, जो आपसी समझौते से तय किया गया है? क्या ऐसा कोई समझौता हुआ है?

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगरः** श्रीमान्, मैं बताना चाहता हूं कि उन लोगों के साथ जो इस संशोधन में विशेष दिलचस्पी रखते हैं, विचारविमर्श करने के बाद, हम सबकी राजी से एक निष्कर्ष पर पहुंचे और इसी निष्कर्ष के आधार पर मैंने संशोधन की सूचना (नोटिस) दी। पर मैं समझता हूं कि जिस संशोधन की सूचना मैंने दी है, उसके स्वरूप तक के सम्बन्ध में मतभेद है। यदि राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले माननीय सदस्य अपने वे संशोधन जिनकी सूचना वे दे चुके हैं, उपस्थित करेंगे तथा उन पर अपने विचार प्रकट करेंगे और यदि मुझे मालूम हुआ कि सभा में प्रकट किये गये ये विचार पूर्णतः वही नहीं हैं, जो मेरी समझ से कुछ दिन पहले उनके विचार थे, तो मैं किसी ऐसी कार्य-प्रणाली का सुझाव रखूंगा, जिससे शायद दोनों दृष्टिकोण एक में मिलाये जा सकें। इसलिये मेरा सुझाव है कि आप राज्य-प्रतिनिधियों को अपने संशोधन उपस्थित करने तथा उन पर अपने विचार प्रकट करने का आदेश दें।

***अध्यक्षः** सबसे अच्छा यह है कि उन सारे संशोधनों पर, जिन्हें पेश करने की सूचना मुझे प्राप्त हुई है, विचार कर लिया जाये। वाक्यांश 7 का पहला संशोधन मि. नाजीरुद्दीन अहमद का है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगालः मुस्लिम): सभापति महोदय, संशोधन नम्बर 192 को मैं कुछ मामूली मौखिक परिवर्तन के साथ पेश करता हूं। मेरा प्रस्ताव है कि वाक्यांश 7 के उप-वाक्यांश (2) के पैरा (बी) के स्थान में, यह पैरा रखा जाये:

> ''(बी) मौलिक अधिकार-क्षेत्र के प्रयोग में, किसी अदालत द्वारा किसी भी व्यक्ति को दी गयी सजा के सम्बन्ध में, 1898 के जाबता फौजदारी में या फिलहाल जारी किसी भी कानून में दी हुई व्यवस्था के बावजूद, अध्यक्ष (प्रेसीडेंट) को, उस व्यक्ति को उक्त अदालत द्वारा दी गयी सजा पूर्णतः अथवा अंशतः माफ करने का सर्वोच्च अधिकार और ताकत प्राप्त रहेगी।''

मेरी अर्ज है कि यह केवल मस्विदा सम्बन्धी संशोधन है और मैं इसे मस्विदा कमेटी के विचारार्थ दाखिल करता हूं।

***अध्यक्षः** सर बी.एल. मित्तर!

सर बी.एल. मित्तर (बड़ौदा): श्रीमान्, मैं जिस संशोधन का प्रस्ताव रख रहा हूं, वह यह है कि वाक्यांश 7 के उप-वाक्यांश (2) (बी) में, ''अधिकार क्षेत्र (ज्यूरिस्डिक्शन)'' शब्द के बाद ''एक प्रान्त में'' शब्द जोड़ दिये जायें।

संशोधन का उद्देश्य यह है कि क्षमा-दान या दंड-स्थगन का जो अधिकार इस समय एक राज्य के शासक में अवस्थित है, कायम रह सके। यदि यह संशोधन स्वीकार कर लिया गया, तो अध्यक्ष की इस ताकत का प्रयोग प्रान्तों में उठने वाले मामलों के लिये किया जायेगा, न कि एक राज्य में उठने वाले मामलों के लिये। मैं यह तर्क समझता हूं कि यूनियन के व्यवस्थापक मण्डल द्वारा निश्चित दोषों के सम्बन्ध में, 'अध्यक्ष' को सर्वोच्च अधिकारी होना चाहिये। मैं यह बात मान लेता, किन्तु राज्य नहीं चाहते कि शासकों की वर्तमान ताकतों में कमी की जाये। मामले का एक हल यह हो सकता है कि शासकों तथा 'अध्यक्ष' दोनों को इस विषय में समवर्ती अधिकार-क्षेत्र प्राप्त रहे। यदि सर गोपालस्वामी संशोध न का ऐसा मस्विदा तैयार करेंगे, जिसके द्वारा शासक की यह ताकत सुरक्षित रहे और 'अध्यक्ष' को भी वही ताकत दी जा सके, तो मैं उसे स्वीकार करने को बिल्कुल राजी हूं।

अध्यक्ष: इसके बाद मेरे पास तीन संशोधन और हैं, जो श्री चनैया, श्री गुरुव रेडड्ी तथा श्री हिम्मत सिंह महेश्वरी के नामों से हैं और सबका अभिप्राय यही है। इसलिये उन्हें इन्हें पेश करने की जरूरत नहीं है।

इनके बाद चेंगलाराय रेडड्ी का संशोधन है, जिसकी संख्या 197 है।

***श्री एच. चेंगलराय रेड्डी** (मैसूर): श्रीमान्, मैं उसका प्रस्ताव नहीं रख रहा हूं।

(श्री गुप्ते ने अपने संशोधन नम्बर 198 का प्रस्ताव नहीं रखा।)

श्री देवीप्रसाद खेतान (पश्चिमी बंगाल: जनरल): श्रीमान्, मैं अपने संशोधन नम्बर 199 का प्रस्ताव नहीं रख रहा हूं।

(श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने पूरक सूची 1 के अपने संशोधन नम्बर 4 का प्रस्ताव नहीं रखा।)

माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगरः श्रीमान्, मैं प्रस्ताव रखता हूं कि वाक्यांश 7 (2) (बी) के स्थान में यह रखा जायेः

''(बी) फौजदारी अधिकार-क्षेत्र के प्रयोग में किसी अदालत द्वारा दी गयी सजा की क्षमा, स्थगन, विश्रान्ति, छूट, मुल्तवी या बदली मंजूर करने की ताकत, निम्न सजायाबियों के सम्बन्ध में, 'अध्यक्ष' को रहेगीः

'(1) उन मामलों के सम्बन्ध में, जिनके विषय में 'संघ-पार्लियामेंट' को कानून बनाने की ताकत है और इकाई के व्यवस्थापक-मंडल (यूनिट लेजिस्लेचर) को नहीं है, संघ कानून के विरुद्ध किये गये अपराधों के लिये हुई, और

(2) फौजी अदालतों द्वारा सुने जाने वाले सारे अपराधों के लिये हुई। संघ कानून द्वारा ऐसी ताकत अन्य अधिकारियों को भी प्रदान की जा सकती है।'

किन्तु शर्त है कि इस उप-वाक्यांश में दी किसी बात से, एक फौजी अदालत द्वारा दी गयी सजा मुल्तवी करने, उसमें छूट देने या उसे बदलने की, 'संघ शासन की सशस्त्र सेनाओं' के किसी अफसर की ताकत में कोई फर्क न पड़ेगा।''

श्रीमान्, इस संशोधन की सूचना मेरे और श्री बी.एल. मित्तर द्वारा अभी पेश किये गये संशोधन के कई समर्थक राज्यों के प्रतिनिधियों के बीच सोच-विचार हो जाने के बाद दी गयी थी। उस संशोधन का विचार यह था कि इस वाक्यांश द्वारा प्रदत्त क्षमा-दान की ताकत को, केवल प्रान्तों में दी जाने वाली सजाओं तक के लिये सीमित रखा जाये। दूसरे शब्दों में, वे चाहते थे कि तमाम सजायाबियों के सम्बन्ध में क्षमा-दान देने की जो असीम ताकत, देशी राज्यों के शासकों को इस समय प्राप्त है, वह उन्हें प्राप्त रहे।

श्रीमान्, यह प्रश्न कुछ महत्वपूर्ण है। अब हम एक संघ (फेडरेशन) की स्थापना कर रहे हैं और सर्व-सत्तायुक्त ताकतों को हम संघ तथा उसकी (इकाइयों) यूनिटों के बीच बांट रहे हैं, कुछ विषयों के सम्बन्ध में कानून बनाने की ताकत संघ को है और अन्य विषयों के सम्बन्ध में संघ को नहीं, केवल यूनिटों को ही कानून बनाने की ताकत है। प्रान्तों के सम्बन्ध में, विषयों की एक तीसरी सूची

[माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर]

भी है और इन विषयों के सम्बन्ध में कानून बनाने की ताकत, संघ तथा प्रान्तों दोनों को ही है।

इस प्रश्न पर विचार करते हुये कि क्षमा-दान (माफी) की ताकत किसमें स्थित होनी चाहिये, हमें दो सिद्धान्तों को ध्यान में रखना होगा। पहला सिद्धांत यह है कि हमें उस सत्ता का भी उचित ध्यान रखना चाहिये, जो कानून निर्मित करती है और जिसके विरुद्ध अपराध किये जाते हैं। दूसरी बात जिसका हमें ख्याल रखना है, उन अदालतों के प्रकार की है, जो इन सजाओं या सजायाबियों की घोषणा करती हैं। स्थिति यह है कि जहां तक ब्रिटिश-भारत का ताल्लुक है, वहां न्याय-व्यवस्था की एक सदृश प्रणाली स्थापित है और प्रान्तों में छोटी से छोटी से लेकर ऊंची से ऊंची अदालतों को, न केवल प्रान्तीय कानूनों के खिलाफ किये जाने वाले अपराधों बल्कि संघ-कानूनों के खिलाफ किये जाने वाले अपराधों की भी सुनवाई का अधिकार-क्षेत्र प्राप्त है। देशी राज्यों में भी ऐसी ही स्थिति है। देशी राज्यों की अदालतों को सब प्रकार के अपराधों की सुनवाई करने की ताकत है—उन अपराधों की भी, जो संघ का जन्म होने के बाद, संघ-कानूनों के विरुद्ध अपराध माने जायें। और शायद एक अपवाद छोड़कर प्रान्त तथा देशी राज्य के बीच क्षमा-दान की ताकत भी न्यूनाधिक एक सी ही है। पिछली बार संशोधित, जाब्ता फौजदारी, (क्रिमिनल प्रोसीड्योर कोड) के अनुसार, एक अपवाद के सिवा प्रायः सारे अपराधों के सम्बन्ध में दी गयी सजाओं को माफ करने, बदलने या उनमें छूट देने की ताकत प्रान्तीय सरकार को ही है। इसमें एक अपवाद यही है कि यदि सजा मृत्यु-दण्ड की है, तो केन्द्रीय सरकार को भी ऐसी ही ताकत प्राप्त है। देशी राज्यों के सम्बन्ध में ऐसा कोई अपवाद इस समय विद्यमान् नहीं है। अब, हमें इस प्रश्न पर विचार करना है कि आया ऐसी परिस्थिति में क्षमा-दान की ताकत हमें प्रान्तों को देनी चाहिये, या केन्द्र को, या दोनों ही को। श्रीमान्, मेरा ख्याल है कि सभा इस बात से सहमत होगी कि जब हम संघ-शासन का एक प्रधान रखने जा रहे हैं और उसे अध्यक्ष (प्रेसीडेण्ट) का नाम दे रहे हैं, तो एक ताकत जो उसे प्रायः स्वतः प्राप्त होनी चाहिये, क्षमा-दान की है। अब हमें देखना है कि अध्यक्ष को क्षमा-दान की यह ताकत, क्या हम निःसीम रूप में देने जा रहे हैं, या हम उसे क्षमा-दान की केवल सीमित ताकत ही देना चाहते हैं? अध्यक्ष की स्थिति उत्तराधिकार-प्राप्त किसी राजा की सी नहीं है कि वह क्षमा-दान की ताकत किसी राज-विशेषाधिकार आदि से प्राप्त करे। यदि

वह क्षमा-दान की ताकत का प्रयोग करता है, तो इसका अधिकार हमें उसे विधान के द्वारा अथवा किसी संघ-कानून के द्वारा ही देना चाहिये। यही कारण है कि विधान के ही अन्दर, हमें इस प्रश्न का निर्णय करना है।

मैं तुरन्त कह सकता हूं कि व्यावहारतः सभी संघ-शासनों में क्षमा-दान की यह ताकत 'संघ-शासन' के प्रधान और 'यूनिट' के प्रधान के बीच बांट दी गई है और जिस सिद्धान्त के आधार पर वह बांटी गयी है, यह है कि संघ-शासन के प्रधान को संघ-कानूनों के खिलाफ किये गये अपराधों को क्षमा करने की ताकत है तथा यूनिट के प्रधान को यूनिट के कानूनों के खिलाफ अपराधों को क्षमा करने की ताकत है। अब हमारे विचारने का प्रश्न यह है कि आया हम इन सारे संघ-शासनों की प्रथा का अनुसरण करेंगे।

मस्विदे का जो वर्तमान स्वरूप है, उसके अन्तर्गत दोनों ही यूनियन विधान में तथा प्रांतीय विधान में, क्षमा-दान की ताकत संघ-शासन के अध्यक्ष को दी गयी है। किन्तु साथ ही यह भी व्यवस्था रखी गयी है कि संघ-कानून के द्वारा यह ताकत अन्य अधिकारियों को भी दी जा सकती है। अनुकरणीय प्रान्तीय-विधान के मस्विदे में, जिसे आप पहले ही स्वीकार कर चुके हैं, और जिसमें क्षमा-दान की कोई भी ताकत प्रान्तों के गवर्नरों को दी गयी है, कोई शर्त नहीं रखी गई है। इसका मतलब यह होता है कि वर्तमान वाक्यांश का अभिप्राय यह है कि 'अध्यक्ष' ही क्षमा-दान देने वाला प्राथमिक अधिकारी है तथा संघ-कानून यह ताकत अन्य लोगों को भी प्रदान कर सकता है।

***अध्यक्षः** मुझे एक कठिनाई मालूम देती है। क्या आप कृपा करके उसे समझायेंगे? दंड-विधान के अन्दर आने वाले अपराधों—मान लीजिये हत्या के सम्बन्ध में—अध्यक्ष द्वारा क्षमा-दान क्या आपके संशोधन से बाहर है?

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगरः** वाक्यांश के वर्तमान स्वरूप के अनुसार, यही बात है।

***अध्यक्षः** वाक्यांश के आप द्वारा संशोधित रूप से, क्या 'अध्यक्ष' को हत्या का अपराध क्षमा करने की ताकत प्राप्त होती है?

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगरः** नहीं, उससे यह ताकत प्राप्त नहीं होती।

[माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर]

जैसा कि मैंने बताया है, वाक्यांश का प्रस्तुत रूप, क्षमा-दान की पूरी ताकत अध्यक्ष को प्रदान करता है, यद्यपि संघ के कानून द्वारा यह ताकत अन्य अधिकारियों को भी प्रदान की जा सकती है। मैंने जिस संशोधन की सूचना दी है, उसके द्वारा अध्यक्ष को केवल संघ-कानूनों के खिलाफ किये गये अपराधों के लिये क्षमा देने की ताकत मिलती है और यही सारी बात है। उदाहरणार्थ, साधारण फौजदारी कानून के अन्तर्गत दी गयी सजाओं के सम्बन्ध में वह क्षमा नहीं दे सकता। मेरा ख्याल है कि प्रान्तों का साधारण फौजदारी कानून समवर्ती (Concurrent) सूची की मद 2 में आता है और समवर्ती सूची के उस प्रकार के मामले में सन् 1935 को एक्ट का सिद्धान्त यह है कि शासन-सत्ता (एक्जीक्यूटिव पावर) के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह उन समवर्ती विषयों पर भी लागू हो, जिनके कि सम्बन्ध में संघ-शासन को भी कानून बनाने की ताकत प्राप्त है।

***अध्यक्ष:** वे कौन से मामले हैं जिन्हें आप सोचते हैं कि उनके सम्बन्ध में अध्यक्ष को क्षमा-दान की ताकत रहेगी? प्राय: पूरा फौजदारी कानून ही प्रांतीय विषय है। वे कौन से अपराध होंगे जिनके सम्बन्ध में अध्यक्ष को क्षमा-दान की ताकत रहेगी?

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर:** श्रीमान्, मुझे ऐसे अपराध बताने चाहियें जैसे आपका कानून के खिलाफ किये जाने वाले अपराध, समुद्री जकात कानून तथा अन्य इसी प्रकार के कानूनों के, जो पूर्णत: संघीय हों, खिलाफ होने वाले अपराध।

हां, तो मेरे संशोधन के पीछे यह सिद्धान्त है कि 'अध्यक्ष' को संघ-कानूनों के खिलाफ किये गये अपराधों के ही मामले में क्षमा, आदि देने की ताकत होगी। साधारण फौजदारी कानून के खिलाफ तथा प्रान्तों या राज्यों द्वारा निर्मित कानूनों के खिलाफ अपराधों को क्षमा करने की ताकत प्रान्तों या राज्यों के प्रधानों को होगी।

***सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास: जनरल): मैं मान लेता हूं कि संघ-सरकार द्वारा अधिकार सौंपे जाने से पृथक, समवर्ती विषयों तथा प्रान्तीय सूची में विशेषकर पड़ने वाले विषयों दोनों ही के सम्बन्ध में प्रान्तीय सरकार को ताकत देने के लिये प्रान्तीय विधान में भी इसी प्रकार का परिवर्तन कर लिया जायेगा।

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगरः** हां, श्रीमान्, विचार यह है कि यदि यूनियन के विधान में आप यह संशोधन कर लें, तो नमूने के प्रांतीय विधान में भी तदनुसार व्यवस्था करनी होगी और ऐसा कर लिया जायेगा।

श्रीमान्, सर बी.एल. मित्तर के संशोधन द्वारा जो बात उठायी गयी है, अब मैं उसे लेता हूं। उनके संशोधन का मतलब है कि इस वाक्यांश की क्षमा-दान की यह ताकत केवल प्रान्तों तक ही सीमित रहनी चाहिये। बेशक, देशी राज्यों को इसकी चिन्ता नहीं है कि क्षमा-दान की ताकत को हम केन्द्र तथा प्रांतों के बीच किस तरह बांटते हैं। इस संशोधन-विशेष को उन बातों से प्रेरणा मिली है, जो देशी राज्यों में इस समय विद्यमान् हैं अर्थात् राज्यों में, उस प्रत्येक अपराध के सम्बन्ध में, जिसकी सजायाबियां शासकों की अदालतों द्वारा होती हैं, क्षमा-दान की ताकत शासकों को ही होती है। अब, श्रीमान्, ऐसे मामलों में क्षमा-दान की ताकत अध्यक्ष से बाहर रखने की आपत्ति किसी सिद्धान्त के आधार पर टिक नहीं सकती। इसका कारण अन्य बात है, क्षमा-दान के प्रश्न का विचार करते समय जिसका ख्याल रखने का अनुरोध मैंने सभा से किया था वह बात यह है कि जो सत्ता कानून निर्मित करती है और कार्यकारिणी (एक्जिक्यूटिव) जो उसके प्रति उत्तरदायी है तथा जिसका कार्य कानून को क्रियान्वित करना है, क्षमा, छूट, कमी आदि के नीति निर्णय के अधिकार से वंचित नहीं की जा सकती। इसलिये, संघीय अपराधों से सम्बन्ध रखने वाली ताकत, संघ के अध्यक्ष को रहना आवश्यक है। मैंने जिस संशोधन की सूचना दी है, उसमें एक बात का ध्यान रखा गया है। मुझे इस बात का भय था कि सजायें माफ करने आदि के सम्बन्ध में जिस ताकत का प्रयोग शासक इस समय करते हैं, उसमें कोई भी कमी करने के लिये शायद वे राजी न हों, क्योंकि इससे उन्हें एक प्रकार की घबराहट का, भाव सुकुमारता का अनुभव हो सकता है, और साथ ही उन्हें यह भी घबराहट हो सकती थी कि यदि उनकी इस ताकत का कोई अंश, आप समवर्ती ताकत के रूप में किसी बाहरी सत्ता में स्थिर करना चाहें, तो इसका अर्थ यह होगा कि किसी राज्य का एक शासक जिस भांति इस ताकत का प्रयोग करना पसन्द करेगा और जिस भांति संघ अध्यक्ष उसे प्रयोग में लाना चाहेगा, उसमें कुछ-न-कुछ विरोध तथा संघर्ष की आशंका रह सकती है। इसलिये मैंने जरूरी समझा कि यदि सम्भव हो सके, तो इस प्रकार के संघर्ष को मौका ही न दिया जाये। और यही कारण है कि इस संशोधन में मैंने अपराधों को दो श्रेणियों में विभक्त कर दिया है। इनमें से एक के अपराधों के क्षमा-दान की ताकत केवल संघ के अध्यक्ष को है और वह, संघ कानूनों के खिलाफ किये जाने वाले अपराधों के सम्बन्ध में है। दूसरी श्रेणी के वे अपराध हैं, जिनके क्षमा-दान की ताकत का प्रयोग किसी

[माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर]

राज्य का शासक अथवा प्रान्त का गवर्नर करेगा। मैं चाहता हूं कि सभा अब यह समझ सके कि यदि इससे एक राज्य-शासक की क्षमा-दान की वर्तमान ताकतों में कमी होती है, तो इससे क्षमा-दान की वे ताकतें भी कम हो जाती हैं, जो जाब्ता फौजदारी कानून के अनुसार इस समय प्रान्तीय सरकार को प्राप्त हैं। इस प्रकार यह संशोधन इस ताकत के सम्बन्ध में प्रान्तों तथा राज्यों दोनों को ही एक स्तर पर स्थापित करने की चेष्टा करता है। 'अध्यक्ष' में यह ताकत स्थिर करने की आवश्यकता इस बात से है कि हम एक संघ-शासन स्थापित करने जा रहे हैं और संघ के अध्यक्ष को कम-से-कम अपराध-क्षमा की ताकत तो हमें देनी ही होगी।

अब, श्रीमान्, कहा जा सकता है कि अध्यक्ष को यह ताकत आप संघ-कानूनों के विरुद्ध सारे अपराधों के लिये क्यों देना चाहते हैं, जबकि वर्तमान दशा में गवर्नर जनरल इस ताकत का प्रयोग प्रांतीय सरकार की केवल समवर्ती ताकत के रूप में कर सकता है और वह भी, मृत्यु-दंड मात्र के सम्बन्ध में। श्रीमान्, इसका केवल यही उत्तर है। हम एक नया विधान बना रहे हैं और वर्तमान किसी भी चीज से हम अनिवार्यतः बंधे नहीं हैं। नवीन विधान निर्मित करने में हमारे पथ-प्रदर्शन के लिये कुछ सिद्धान्त मौजूद हैं।

यदि उस विधान के अन्तर्गत, हम कुछ वे ताकतें जो पहले राज्यों को प्राप्त थीं, अब अकेले केन्द्र को देने जा रहे हैं, तो यह उचित ही है कि उन विषयों की शासन-व्यवस्था से सम्बन्ध रखने वाली सारी सहायक ताकतें भी केन्द्र को दी जानी चाहियें और यदि ऐसा करने से प्रान्तों की वर्तमान प्रथा में भी कुछ हस्तक्षेप हो रहा हो, तो हमें उस कमी को स्वीकार करने के लिये तैयार रहना चाहिये। जिस संशोधन की मैंने सूचना दी है, उसका वास्तव में यही तात्पर्य है।

अब, इस संशोधन के अन्त में दो-तीन बातें और हैं, जिनका मैं सरसरी तौर पर उल्लेख करना चाहता हूं। इस संशोधन द्वारा 'अध्यक्ष' को, फौजी अदालतों द्वारा सुनवाई किये जाने वाले सारे अपराधों के सम्बन्ध में क्षमा-दान आदि की ताकत प्रदान की गई है। फौजी अदालतें भारतीय सेना कानून द्वारा स्थापित की जाती हैं, और भारतीय सेना को केन्द्र के नियंत्रण में रहना है। अतएव, यह ठीक ही है कि भारतीय सेना के कर्मचारी, जिन्हें इन फौजी अदालतों से सजायें मिलती हैं, सजाओं की माफी, बदली तथा अन्य ऐसी ही रियायतें संघ के अध्यक्ष से प्राप्त करने की आशा करें।

दूसरी बात जिसका मैं उल्लेख करना चाहता हूं, मस्विदे के अन्त में दिया हुआ शर्तनामा है। यह सन् 1935 के 'भारत शासन विधान' की धारा 295 से लिया गया है। इसमें कहा गया है कि ''इस उप-वाक्यांश में दी किसी बात से, एक फौजी अदालत द्वारा दी गयी सजा मुल्तवी करने, उसमें छूट देने या उसे बदलने की, ''संघ-शासन की सशस्त्र सेनाओं' (ये शब्द भारत-शासन-विधान के 'हिज मैजेस्टीज फोर्सेज' शब्दों के स्थान में प्रयुक्त हुए हैं) के किसी अफसर की ताकत में कोई फर्क न पड़ेगा।'' 'भारतीय सेना कानून' के अन्तर्गत निर्मित 'नियमों' के अनुसार, भारतीय सेना के कुछ अफसरों को, सजाओं में छूट देने के अधिकार प्राप्त है और ये अधिकार इस शर्तनामें के द्वारा सुरक्षित रखे गये हैं।

श्रीमान्, मैं समझता हूं कि सब बातों को लेते हुये, यह संशोधन-विशेष उस सिद्धान्त के पूर्णतः अनुकूल है, जो किसी भी 'संघ-विधान के' निर्माण का आधार होता है और किसी राज्य के शासक तथा प्रान्तों के गवर्नरों की ताकतों में इससे जो कमी आती है, ऐसी बात है, जिसकी किसी भी संघ विधान में उम्मीद करना स्वाभाविक मात्र है। श्रीमान्, मैं इस संशोधन का प्रस्ताव रखता हूं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रासः जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव रखना चाहता हूं कि संशोधित मस्विदे के उप-वाक्यांश (2) (बी) के अन्त में निम्नलिखित जोड़ दिया जाये। मैं सदस्यों में प्रचारित संशोधन के मस्विदे का जिक्र कर रहा हूं और यह सर एन. गोपालस्वामी आयंगर के संशोधन का संशोधन है। यह संशोधन अध्यक्ष के अधिकारों के परिवर्तन के सम्बन्ध में है, उसका क्षमा-दान का अधिकार बढ़ा कर प्रान्तों में दी गयी मौत की सजाओं पर भी लागू करने के लिये है।

अब मैं अपने संशोधन की शब्दावली पढ़ता हूं:

> ''जहां किसी प्रान्त में किसी व्यक्ति को मौत की सजा दी गयी हो, 'अध्यक्ष' को सजाएं मुल्तवी करने, उनमें छूट देने तथा उन्हें बदलने की वे सारी ताकतें प्राप्त रहेंगी, जो उस प्रान्त के गवर्नर को प्राप्त हों।''

श्रीमान्, मैं इसे किसी प्रांत में दी गई मौत की सजा के क्षमा-दान की ताकत तक ही सीमित रख रहा हूं। इस ताकत को बढ़ा कर, किसी राज्य में दी गई मौत की सजा पर भी लागू करने से मुझे प्रसन्नता होगी। संसार के विभिन्न देशों में मौत की सजा देना बंद किया जा रहा है। नार्वे में मृत्यु दण्ड देना बंद

[श्री एम. अनंतशयनम आयंगर]

हो चुका है। रूस जैसे देश में भी काफी अरसा गुजरे, जहां की सामूहिक हत्याओं के बारे में हम सुना करते थे, प्राण-दण्ड देना बन्द किया जा चुका है। संसार के सभी प्रगतिशील देशों ने प्राण-दण्ड एकदम बन्द कर दिया है। वर्तमान भारत-शासन विधान के अनुसार प्राण-दण्ड के सारे मामलों में गवर्नर-जनरल को गवर्नर के साथ क्षमा-दान की समवर्ती ताकत प्राप्त है। अन्य मामलों में माफी, या दण्ड स्थगन या क्षमा-दान किसी भी तरह से देने का एक अधिकार साधारण फौजदारी कानून के अनुसार सारे प्रांतों में गवर्नर को प्राप्त है। गवर्नर-जनरल केवल प्राण-दण्ड के मामलों में हस्तक्षेप कर सकता है। सन् 1935 का कानून (एक्ट) पास होने से पहले गवर्नर जनरल को किसी भी दण्ड के मामले में हस्तक्षेप करने का अधिकार उसी प्रकार प्राप्त था, जिस प्रकार गवर्नर को क्षमा-दान के अपने अधिकार का प्रयोग करने का हक था। किन्तु सन् 1935 के कानून के बाद, प्रांतीय शासनाधिकार को पूर्ण बनाने के लिये प्राण-दण्ड के मामलों को छोड़कर अन्य दण्डों के सम्बन्ध में गवर्नर जनरल का क्षमा-दान का समवर्ती अधिकार क्षेत्र छीन लिया गया। केवल प्राण-दण्ड के मामले में ही उसका क्षमा-दान का अधिकार रक्षित रखा गया। अब, इस सभा के सामने श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर द्वारा जिस संशोधन का मस्विदा रखा गया है, उसके अनुसार, संघ-शासन के पूर्णतः अन्तर्गत मामलों को छोड़कर, 'अध्यक्ष' को क्षमा-दान का कोई अधिकार नहीं दिया गया है। दूसरे शब्दों में जहां कभी भी संघीय व्यवस्थापक मंडल कोई कानून पास करे, केवल उन्हीं विषयों के सम्बन्ध में 'अध्यक्ष' को क्षमा-दान की ताकत मिली है। इसमें संदेह नहीं कि इस प्रकार सन् 1935 के एक्ट की स्थिति में सुधार हुआ है। किन्तु मृत्यु-दण्ड के क्षमा-दान का अधिकार, दण्ड भले ही कहीं भी दिया गया हो, छीन लिया गया है। जीवन का दण्ड एक गम्भीर सजा है, इसलिये इस बात का विचार करने के लिये अन्य सूत्र भी होना चाहिये कि क्या ऐसे भी कोई मामले हैं, जिनके लिये क्षमा-दान की ताकत का प्रयोग किया जाना चाहिये। यदि कुछ मामलों में 'अध्यक्ष' को अपील की सुनवाई करने का अधिकार होता, तो कुछ संदेह भी किया जा सकता था। किन्तु यहां 'अध्यक्ष' के अपील सुनने के अधिकार-क्षेत्र का कोई प्रश्न नहीं है। उसका अधिकार-क्षेत्र तो समवर्ती है। गवर्नर को स्वयं क्षमा-दान की स्वतंत्रता है। यदि गवर्नर क्षमा नहीं करता, तो गवर्नर-जनरल क्षमा-दान के अपने अधिकार का प्रयोग करेगा। उन मामलों में, जिन में गवर्नर द्वारा क्षमा दे दी जायगी, 'अध्यक्ष' को वह क्षमा रद्द करके अपराधी को दण्ड देने का अधिकार नहीं है। यदि किन्हीं लोगों में इस विषय में कोई संदेह हों, तो मैं उन्हें बेकार बताने तथा दूर करने की कोशिश कर रहा हूं। फौजदारी

के मामलों में यदि गवर्नर किसी आदमी को क्षमा-दान करता है, तो वह आदमी बिना किसी क्षति के बच जाता है, किन्तु यदि गवर्नर क्षमा-दान नहीं देता, तो उस आदमी को 'अध्यक्ष' तक पहुंचने का मौका रहता है और 'अध्यक्ष' स्वयं हस्तक्षेप कर सकता है तथा प्राणदण्ड के मामलों में क्षमा-दान के अधिकार का प्रयोग कर सकता है। मुझे आशा है कि सभा कृपा करके यह संशोधन स्वीकार करेगी, जिसके द्वारा श्री गोपालस्वामी के इस संशोधन में वह ताकत शामिल करने की कोशिश की गई है, जो इस समय गवर्नर-जनरल द्वारा प्रयोग में लायी जाती है।

श्रीमान्, उन अन्य ताकतों के सम्बन्ध में, जो 'अध्यक्ष' को संघ-कानूनों के विरुद्ध होने वाले अपराधों के मामले में क्षमा-दान का एकाधिकार देने के लिये प्रदान की गयी हैं, मैं राज्यों से केवल यही अपील करूंगा कि जहां तक संघ-कानूनों के विरुद्ध अपराधों का सम्बन्ध है, वे 'अध्यक्ष' का वह अधिकार छीनने की कोशिश न करें। राज्यों ने समर्पण किया है, सोच-समझ कर वे आए हैं और रक्षा, परराष्ट्र विषय तथा यातायातादि (कम्यूनिकेशन्स) के सम्बन्ध में, वे यूनियन में सम्मिलित हो गए हैं। इन विभागों को चलाते रहने के लिए, कर-व्यवस्था सम्बन्धी अन्य बातों में भी वे सम्मिलित हो सकते हैं। यदि इन विभागों तथा इन कानूनों के खिलाफ अपराध हो सकते हैं, तो यह प्राकृतिक है कि जहां भी उनका प्रयोग किया जाये, 'अध्यक्ष' को ही उसकी ताकत रहनी चाहिये। राज्यों के शासकों को यह कदापि न खयाल करना चाहिये कि क्षमा-दान का उनका अधिकार छिन गया है। यूनियन में सम्मिलित होकर शासक ने स्वयं अपने राज्य के इस संघीय विषयों में दखल देने का अधिकार दिया है। इसलिये, इस प्रकार की आपत्ति का कोई मतलब नहीं है। यदि यह आपत्ति मान ली जाये, तो इसका अर्थ यह होगा कि जो चीज एक हाथ से दी गई वह दूसरे हाथ से ले ली गई। यदि रक्षा-व्यवस्था संघ-शासन को सौंपी गई है, तो उस विषय में किसी प्रकार का हस्तक्षेप या विरोध अध्यक्ष द्वारा आपत्ति पत्र के दायर करने पर दंडनीय होना चाहिये। इस मामले में प्रतिष्ठा का कोई प्रश्न नहीं है, वह भी विशेषकर जब राज्यों की प्रजा इस संशोधन के पक्ष में है। यहां पर राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले मंत्रियों से मैं अपील करता हूं कि जहां तक संघीय विषयों की सम्बन्ध में क्षमा-दान का प्रश्न है, उन्हें राज्यों को संघ के अध्यक्ष को इसका पूर्णाधिकार देने से बचाने की कोशिश न करनी चाहिये। ऐसा इसलिये, क्योंकि रक्षा-व्यवस्था तथा वे अन्य विषय राज्यों के शासकों द्वारा ही संघ-शासन को सौंपे गये हैं। अन्यथा, जब तक अधिकार नहीं दिये जाते और वे क्रियान्वित नहीं किए जा सकते, केवल कानून पास करने से

[श्री एम. अनंतशयनम् आयंगर]

कोई लाभ न होगा। यदि संघ का 'अध्यक्ष' अथवा संघीय कार्यकारिणी एक ऐसा कानून कार्यान्वित करने की कोशिश कर रही है, जो उस अधिकार के अन्तर्गत है जो 'शासक' ने स्वयं दे रखा है, तो उसमें 'शासक' का कोई हस्तक्षेप उन ताकतों में हस्तक्षेप करना होगा, जो उसने 'अध्यक्ष' को दी हैं। मैं मंत्रियों से प्रार्थना करता हूं कि कृपा करके वे इस मामले पर विचार करें और सर एन. गोपालस्वामी आयंगर ने जिस संशोधन के मस्विदे का प्रस्ताव रखा है, उसमें कोई संशोधन न पेश करें। उनसे मेरा सादर अनुरोध है कि इस मामले को वे अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न न समझें। उन्होंने एक निश्चित कदम उठाया है, और यह उसी कदम के अधीन एक ताकत है, जो 'अध्यक्ष' को अवश्य प्रदान की जानी चाहिये। वर्ना, दोनों में संघर्ष ही होगा और केन्द्र को वह अधिकार दिया जाना बेकार हो जायेगा।

***अध्यक्ष:** मूल वाक्यांश तथा संशोधनों पर अब बहस हो सकती है। मैं नहीं समझता कि अन्य कोई संशोधन भी हैं, जिनकी सूचना मुझे मिली हो।

***श्री मुहम्मद शरीफ** (मैसूर): सभापति महोदय, इस अत्यंत जटिल प्रश्न पर सर एन. गोपालस्वामी आयंगर तथा श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने जो प्रशंसनीय भाषण किए हैं, उन्हें मैंने बड़े ध्यान से सुना है। यह प्रश्न जटिलता से पूर्ण है, इससे कोई भी इनकार नहीं कर सकता। मैं चाहता हूं कि इस प्रश्न की जटिलता के खयाल से, हमें उसकी भलाई-बुराई के विषय में अच्छी तरह से विचार कर सकने के लिए अधिक समय दिया गया होता, किन्तु चूंकि यह हमारे सामने रखा जा चुका है और आप चाहते हैं कि हम इसके विषय में अपने विचार प्रकट करें, मैं समझता हूं राज्य-प्रतिनिधियों के रूप में हमारे लिये यह बताना आवश्यक है कि इस मामले में हमारे क्या विचार हैं।

श्रीमान्, मैं जरूर मानता हूं कि जहां तक 'अध्यक्ष' का सम्बन्ध है, इस बात का खयाल करके कि उस पर शासन-व्यवस्था का भार है, उसको क्षमा-दान की ताकत रहनी चाहिये और फौजदारी-अधिकार-क्षेत्र में उठने वाले मामलों के सम्बन्ध में उसे सजाएं बदलने की भी ताकत रहनी चाहिए। ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है कि उसे दया-दान का ताकत का प्रयोग करना हो। किन्तु श्रीमान्, आपसे मेरी अर्ज यह है कि जहां तक इस ताकत का सम्बन्ध है, वह केवल प्रान्तों तक ही सीमित रखी जानी चाहिए। यदि उसका असर शासकों की सर्व-सत्ता पर पड़ने दिया जायेगा, तो मेरी अर्ज है कि इसमें संघर्ष पैदा हो जायेगा। कांग्रेस पार्टी अनेक

बार कह चुकी है कि जहां तक जनता की सर्व-सत्ता का प्रश्न है, उस पर कोई असर न होगा। वाइसराय महोदय ने 25 तारीख को जो वक्तव्य दिया था, उसमें उन्होंने कहा था कि जहां शासकों का सम्बन्ध है, उन्हें किसी प्रकार के खतरे का डर न होना चाहिये। यह भी तर्क किया गया था कि जहां तक इस अधिकार का सवाल है, वह केवल संघीय विषयों के लिये होगा। कल हमने भाग 6 पर विचार किया था, जिसमें वाक्यांश 1 इस प्रकार है:

> ''किसी पूर्णतया संघीय विषय के लिये कानून बनाने में, संघ पार्लियामेंट, एक 'यूनिट' की सरकार पर, चाहे वह एक प्रान्त, एक देशी राज्य या अन्य इलाका हो, अथवा उस सरकार के किसी अफसर पर, उस विषय के सम्बन्ध में किन्हीं भी कार्यों को संघ-सरकार की ओर से संभालने का भार डाल सकती है।''

इस प्रकार जब हम कहते हैं कि जहां तक इन संघीय विषयों का प्रश्न है, उनकी शासन-व्यवस्था शासकों द्वारा चलायी जा सकेगी, तो मैं नहीं समझता कि क्या कारण है कि फौजदारी के अधिकार-क्षेत्र में, हम उनसे क्षमा-दान का अधिकार, दण्ड परिवर्तन का अधिकार, आदि छीन लें। जहां तक मैसूर का सम्बन्ध है, वहां श्रीमान्, महाराज ने इस राज-अधिकार का बहुत ही कम प्रयोग किया है। हर बात हाईकोर्ट के लिये छोड़ दी गयी है। महाराज बिल्कुल हस्तक्षेप नहीं करते। इस प्रकार फर्ज कीजिये कि यह ताकत उन्हें सौंपी ही जा रही है, तो भी उसके दुरुपयोग की कोई आशंका नहीं है। इसके खयाल से, मैं सर एन. गोपालस्वामी आयंगर द्वारा प्रस्तावित संशोधन से सहमत होने का निश्चय नहीं कर पा रहा हूं।

***श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय** (ग्वालियर): श्रीमान्, सभापति महोदय, मैं अपना दृष्टिबिन्दु प्रकट करने यहां उपस्थित हुआ हूं। मैं एक राज्य से आया हूं। मेरा खयाल है कि एक संघ-शासन में सर्व-सत्ता बट जाती है और सर्वेसत्ता का कुछ अंश संघ-शासन को भी दिया जाता है। इसलिये यह उचित ही है कि 'अध्यक्ष' के लिये क्षमा-दान के जिस अधिकार की व्यवस्था की गयी है, कायम रहनी चाहिये। और यह ठीक भी नहीं है कि सर्व-सत्ता 'शासक' अपने हाथ में रखें। जब वे अन्य मामलों में अपनी सर्व-सत्ता संघ-शासन को सौंप रहे हैं, तो उन्हें यह अधि कार भी सौंपना चाहिये। इसलिये मेरी तजवीज है कि श्री अनंतशयनम् आयंगर तथा सर एन. गोपालस्वामी आयंगर का संशोधन अवश्य स्वीकार किया जाना चाहिये।

***श्री चेंगलराय रेड्डी:** श्रीमान् सभापति महोदय, सर एन. गोपालस्वामी आयंगर का सुबोध तथा विश्वासजनक भाषण सुनने के बाद मैंने सोचा था कि उन्होंने सभा के सामने जो मस्विदा पेश किया है, उस पर कोई विवाद न होगा। किन्तु मैं देखता हूं कि मैसूर के एक मेरे माननीय मित्र ने उसके सम्बन्ध में अपना मतभेद प्रकट किया है। यह मालूम किया जा सकता है कि स्मृति-पत्र में यह मस्विदा पहले पहल जिस रूप में रखा गया था, वह बहुत ही व्यापक था। इसके द्वारा सारे अपराधों के क्षमा-दान का अधिकार दिया गया था और मालूम होता था कि उससे संघ के अध्यक्ष को व्यापक ताकतें प्रदान की गयी हैं। पर मैं उन लोगों में से था, जिन्होंने समझा कि 8वें तथा 9वें वाक्यांशों को साथ लेते हुए भी, इस वाक्यांश के मस्विदे द्वारा वास्तव में व्यापक क्षमता नहीं दी गयी है, बल्कि वह ताकत कई शर्तों के साथ दी गयी है। किन्तु राज्यों के कुछ प्रतिनिधियों की ओर से इस संशोधन की सूचना दी गयी कि अध्यक्ष को दी जाने वाली क्षमा-दान अधिकार की यह ताकत केवल प्रान्तों में होने वाले अपराधों के लिये ही दी जानी चाहिये। श्रीमान्, यदि मुझे यह शब्द इस्तेमाल करने की इजाजत दी जाये, तो मैं कहूंगा कि इसके प्रत्यावेश के रूप में मैंने एक संशोधन की सूचना दी थी कि 'अध्यक्ष' को यह ताकत संघ-कानूनों के खिलाफ होने वाले अपराधों के सम्बन्ध में दी जानी चाहिये। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि सर गोपालस्वामी आयंगर ने जो मस्विदा पेश किया है, वह दोनों पक्षों का खयाल करके रखा गया है और उससे इस सभा के सभी दलों को संतुष्ट होना चाहिये। श्रीमान्, हमें परायणता (निष्ठा) की उन भावनाओं में न बह जाना चाहिये, जो इस देश में अब तक विद्यमान् रही हैं। परायणता की नवीन भावनाओं का जन्म हो रहा है। जब हम उन राज्य के प्रति अपनी परायणता का विचार करें, जिनसे कि हम आये हैं, तो हमें यह बात न भूलनी चाहिये कि हमें उस संघ-शासन का भी परायण बनना है, जिसे हम अब इस देश में जन्म दे रहे हैं। *(हर्ष ध्वनि)* हमें परायणता का अपना भाव बदलना होगा; परायणता के हमारे इन भावों में सामंजस्य लाना आवश्यक है। हमें याद रखना चाहिये कि 'यूनिटों' का बल, संघ-शासन के बलवान् होने में है और संघ-शासन का बल भी 'यूनिटों' के बल में है। दोनों ही परस्पर निर्भर हैं। हमें छोटे विचारों से प्रभावित होकर, केवल 'यूनिट' के ही बल का अथवा अकेले 'संघ-शासन' के ही बल का खयाल न रखना चाहिये। मैं अनुरोध करना चाहूंगा कि हमें 'यूनिट' के बल को तथा 'संघ-शासन' के बल को एक सम्मिलित बल के रूप में देखना चाहिये। जिस हद तक राज्य अपने अधिकार संघ-शासन को सौंपेगा, उसी हद तक उन्हें संघ-कानूनों के विरुद्ध होने वाले अपराधों के सम्बन्ध में क्षमा-दान, आदि की ताकत 'अध्यक्ष' को देनी होगी। मैं यहां तक कहूंगा कि

संघ-कानूनों के खिलाफ होने वाले अपराधों के सम्बन्ध में, संघ-शासन के अध्यक्ष को सर्वोच्च अधिकारी होना चाहिये। इसलिये मेरा अनुरोध है कि सर गोपालस्वामी आयंगर के संशोधन का मस्विदा दोनों पक्षों का खयाल करके बना होने के कारण, वह इस सभा के सभी दलों को स्वीकार्य होना चाहिये। यदि मुझे यह कहने की इजाजत हो तो मैं कहूंगा कि हमें बादशाह के प्रति, स्वयं बादशाह से भी अधिक भक्ति परायण न बनना चाहिये। देशी राज्यों के उन शासकों को भी, जो संघ-शासन में सम्मिलित हो रहे हैं, आंखें खोल कर और संघ में शमिल होने से जो बातें पैदा होती हैं वे सब स्वीकार करने के लिये तैयार होकर, ऐसा करना चाहिये, न कि हर तरह की शर्तों के साथ। श्रीमान्, इस प्रकार के एक दो प्रश्नों पर हमें साफ-साफ बात करनी चाहिये। इन प्रश्नों से बचने की हमें कोशिश न करनी चाहिये। संघीय विषय के सम्बन्ध में, मेरे दिमाग में इस समय केवल रक्षा-व्यवस्था, परराष्ट्र विषय तथा यातायात व्यवस्था ही है, और संघ-कानूनों के विरुद्ध होने वाले अपराधों के सम्बन्ध में, सर्वोच्च अधिकारी 'अध्यक्ष' ही होना चाहिये। यदि सारी समस्या पर हम उदारता, राजनीतिज्ञता तथा देश-प्रेम से पूर्ण दृष्टि से विचार करें, तो यही वह स्थिति है जिसे हमें स्वीकार करना होगा। मुझे आशा है कि सर गोपालस्वामी आयंगर ने जिस संशोधन का प्रस्ताव रखा है और जिसका समर्थन, उन्होंने इतने सुबोध तथा तर्कयुक्त ढंग से किया है, उस पर कोई आपत्ति न की जायेगी। राज्यों के हित के लिये, संघ-शासन के हित के लिये और सारे भारत के हित के लिये मैं बिना किसी शर्त के उनके संशोधन का पूर्ण समर्थन करता हूं।

***श्री एम.एस. अणे** (दक्षिणी रियासतें): श्रीमान्, क्या इस समय वाक्यांश पर और साथ ही संशोधनों पर भी बहस चल रही है?

***अध्यक्ष:** हां, वाक्यांश तथा संशोधनों पर।

***सर बी.एल. मित्तर:** श्रीमान्, मैं अपने संशोधन पर जोर नहीं देना चाहता हूं और सभा से उसे वापस लेने की इजाजत चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** क्या सभा, सर बी.एल. मित्तर को अपना संशोधन वापस लेने की इजाजत देती है?

***श्री हिम्मतसिंह के. महेश्वरी** (सिक्किम व कूच बिहार समूह): किन्तु श्रीमान्, अन्य लोग भी हैं जिनके पास ऐसे ही संशोधन हैं, पर उन्होंने उनके प्रस्ताव इसलिए नहीं रखे, क्योंकि सर बी.एल. मित्तर ने अपना संशोधन पेश किया था। श्रीमान्, क्या मैं कुछ शब्द बोल सकता हूं?

***अध्यक्षः** निश्चय ही।

***श्री हिम्मतसिंह के. महेश्वरीः** श्रीमान्, अपने गुरू सर गोपालस्वामी आयंगर का भाषण, मैंने बड़े ध्यान तथा आदर के साथ सुना, किन्तु उनके प्रति उचित सम्मान के साथ मुझे कहना चाहिये कि मैं उससे प्रभावित नहीं हुआ हूं। मैं समझता हूं कि उनका मुख्य तर्क यही था कि चूंकि प्रान्तों के गवर्नरों को क्षमा-दान का अधिकार न रहेगा, इसलिये राज्य के शासकों द्वारा मुक्त क्षमा-दान की वर्तमान ताकत भी कम कर दी जानी या ले ली जानी चाहिये।

***सर एन. गोपालस्वामी आयंगरः** श्रीमान्, मुझे निश्चय नहीं है कि मैंने जो कहा है, इस रूप में कहा है।

***श्री हिम्मतसिंह के. महेश्वरीः** मैं गलती स्वीकार करता हूं। उनका खयाल यह मालूम देता है कि यह कम या अधिक, घबराहट का प्रश्न था। इस बात से मैं उनसे सहमत हूँ। भले ही कुछ हो, राज्य की सीमा के अन्दर 'शासक' की प्रतिष्ठा कायम रखना है, और यदि आप उससे न्याय-वितरण की वह ताकत भी छीन लें जिसका उपभोग, वह अभी तक करता आया है, तो उसकी प्रतिष्ठा पर इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा और वह भी राज्य-सीमा के भीतर ही। अपने 5 जुलाई के वक्तव्य में माननीय सरदार पटेल ने नरेशों को यह आश्वासन दिया था कि हमारा मुख्य उद्देश्य एक-दूसरे का दृष्टिकोण समझने और ऐसे निर्णय पर पहुंचने का होना चाहिये जो सबको स्वीकार्य तथा देश के लिये सर्वाधिक हितकर हो। श्रीमान्, इस आश्वासन के प्रकाश में, मैं यह सुझाने का साहस करता हूँ कि इस मस्विदे के निर्माताओं को सारी स्थिति पर एक बार फिर विचार करना और देखना चाहिये कि क्या इसका कोई अच्छा रास्ता नहीं निकाला जा सकता। कठिनाई मुख्यतः एक बात के सम्बन्ध में पैदा होती है जो अदालतें संघ-कानून में आने वाले मुकदमों की सुनवाई करेंगी, राज्यों की अदालतें होंगी। इस प्रकार राज्य की अदालत तो, एक व्यक्ति को संघ कानून के अनुसार सजा देगी और राज्य की हाईकोर्ट उस सजा को बहाल रखेगी और फिर इतने सबके बाद, एक बाहरी सत्ता उस सजा की माफी दे देगी। ऐसे मामले में कुछ जटिलता तथा कुछ बेचैनी और

सम्भवतः संघर्ष भी पैदा हो सकती है। इस सबसे बचने के लिये, श्रीमान्, मुझे यह वांछनीय जान पड़ता है कि विधान-विशेषज्ञ इस विषय पर एक बार फिर एक साथ विचार करें। मैं स्वयं, इस मामले में कोई ऐसा समझौता या निश्चय नहीं चाहता जिससे अप्रसन्नता का कोई भाव पैदा हो जाये या जिससे कोई गलतफहमी पैदा हो; विशेषकर इसलिये, क्योंकि मुझ से पहले बोलने वाले कुछ वक्ताओं ने अपने भाषणों से यह संकेत दिया है अथवा सुझाया है कि इस मामले से कुछ उत्तेजना भी पैदा हुई है। जहां तक साधारण कानून के अन्तर्गत अपराधों का सम्बन्ध है, ताकतों का प्रश्न बिल्कुल नहीं उठता। असली मस्विदे से वह ताकत भी छिन गई थी। अब इस मसविदे में संशोधन हो गया है और यह स्पष्ट कर दिया गया है कि साधारण कानून के अन्दर आने वाले अपराध शासकों के ही पूर्ण अधिकार में रहेंगे और देश के साधारण कानूनों के अधीन दिये जाने वाले क्षमादान शासकों के ही पूर्ण अधिकार में रहेंगे। किन्तु इससे भी स्थिति में पर्याप्त सुधार नहीं होता। संशोधित मस्विदे में एक वाक्यांश है, जो इस प्रकार है:

> ''संघ-कानून द्वारा यह ताकत अन्य अधिकारियों को भी प्रदान की जा सकती है।''

विचार यह मालूम देता है कि ये ताकतें समवर्ती रूप में प्रान्त के गवर्नर को भी प्रदान की जायें। जहां तक राज्यों के शासकों का सम्बन्ध है, उनको कोई ताकत देने का सवाल हो ही नहीं सकता क्योंकि वे पहले से ही ऐसी ताकत का प्रयोग करते हैं। अतएव, इस वाक्यांश के प्रकाश में सारी स्थिति पर फिर विचार करना और भी जरूरी है। सबको अपने रुख के सम्बन्ध में पुनः सोच-विचार कर सकने का मौका देने के लिये, यदि 'सभा' इस वाक्यांश का विचार स्थगित करने को सहमत होगी, तो मैं बहुत कृतज्ञ होऊंगा।

श्री के.एम. मुंशी (बम्बईः जनरल): श्रीमान्, यह प्रश्न बड़े ही वैधानिक महत्व का है, और मेरी अर्ज है कि केवल राज्यों के शासकों या प्रान्तों के गवर्नरों के अधिकारों के खयाल से अथवा उस विषय के लिये, 'जाब्ता फौजदारी कानून' या वर्तमान भारत शासन-विधान की व्यवस्थाओं के खयाल से ही, उस पर विचार नहीं किया जा सकता। वास्तव में श्रीमान्, जैसा कि सर्व-ज्ञात है, संघ-शासन में एक नागरिक, अपने अधिकारों व दायित्वों के लिये, केन्द्र से प्रत्यक्ष रूप में सम्बन्धित होता है। प्रत्येक नागरिक की राजभक्ति, चाहे वह किसी देशी राज्य में हो या प्रान्त में जहां तक यूनियन का प्रश्न है, प्रत्यक्ष होगी। संघ-कानून प्रत्येक नागरिक

[श्री के.एम. मुंशी]

पर प्रत्यक्ष रूप में लागू होंगे, और इस कानून से सम्बन्ध रखने वाला कोई अपराध केवल उस राज्य या प्रान्त के ही विरुद्ध अपराध नहीं है, बल्कि संघ-सरकार के विरुद्ध अपराध है। इसलिये, वैधानिक सिद्धान्त के अनुसार, दण्ड-स्थगन अथवा क्षमा-दान के अधिकार का, संघ के प्रधान अर्थात् अध्यक्ष में स्थिर करना आवश्यक है। और मेरी अर्ज है कि यहां तक स्थिति निर्विवाद है। सभी शामिल होने वाले राज्य, जब वे संघ-शासन में आते हैं, यूनियन का एक अंग बन जाते हैं और अपने राज्यों में संघ-कानूनों का अनुसरण स्वीकार कर लेते हैं। उस हद तक वे स्वीकार कर लेते हैं कि संघ-कानून के क्षेत्र में, संघ-शासन सर्वोच्च सत्ता है और संघ-सरकार के प्रतिनिधि के रूप में केवल 'अध्यक्ष' ही अन्तिम तथा प्रथम सत्ताधारी हो सकता है, जो दण्ड-स्थगन अथवा क्षमा-दान स्वीकार कर सकता है। यही कारण है कि अमेरिकन विधान में, जैसा कि सर्वज्ञात है, संयुक्त राष्ट्र (अमेरिका) के विरुद्ध अपराधों के लिये दण्ड-स्थगन या क्षमा-दान मंजूर करने का अधिकार 'अध्यक्ष' को ही दिया गया है। मेरी अर्ज है कि हमारे लिये भी, वैसी व्यवस्था, न केवल वैधानिक सिद्धान्त की दृष्टि से, बल्कि निपुणता की दृष्टि से भी आवश्यक है। श्रीमान्, स्थिति यह है। मेरे माननीय मित्र सर गोपालस्वामी आयंगर ने आय कर कानूनों का जिक्र किया है। किन्तु अन्य संघ-कानून भी हो सकते हैं—भगोड़े अपराधियों को दूसरे देश की सरकार को सौंपने से सम्बन्ध रखने वाले कानून, नागरिकता-प्रदान, रक्षा-व्यवस्था, पर-राष्ट्र, विषय, तथा संघ-सरकार के विरुद्ध राजद्रोह से सम्बन्ध रखने वाले कानून—जो, 'केन्द्र' के अस्तित्व के लिये अत्यधिक महत्व के विषय हैं; और इसीलिये, मेरी अर्ज है कि क्षमा-दान की ताकत संघ-सरकार के प्रधान के सिवा और किसी को नहीं दी जा सकती। यदि यह अधिकार राज्य के शासक को या प्रान्तीय गवर्नर को दिया गया, तो संयोग की स्थिति में इसका परिणाम विनाशकारी सिद्ध होगा। उदाहरणार्थ, यह लीजिये। सिद्धान्ततः गवर्नर या शासक को—क्योंकि उनकी स्थिति एक ही सी होगी—उस राज-अधिकार का, जिसका 'यूनियन' के प्रधान में पूर्णरूपेण स्थिर रहना आवश्यक है, केवल एक भाग ही सौंपा जायेगा। मेरी अर्ज है कि यह सिद्धान्त के प्रतिकूल है। किन्तु इससे पृथक, व्यवहार में असमानता भी होगी। फर्ज कीजिये कि प्रांत 'ए' में उत्तरदायी मंत्रिमंडल अपने मत का एक निश्चय करता है और गवर्नर को किसी व्यक्ति-विशेष को रिहा करने की सलाह देता है, इसकी कोई अपील नहीं है। किन्तु, फिर एक दूसरे प्रान्त में इससे भिन्न मत का निश्चय किया जाता है। इस प्रकार आप देखेंगे कि एक ही अपराध के लिये, एक प्रान्तीय गवर्नर क्षमा-दान देता है, और दूसरा गवर्नर क्षमा-दान नहीं देता और हमें यह भी मान लेना चाहिये कि राज्यों के शासक

सदा-सर्वदा के लिये ही पूर्णाधिकारी स्वल्प सत्ताधारी बने रहेंगे, जैसा कि वे समझते हैं कि आज हैं। बहुतेरे राज्य, एक अंश में उत्तरदायी शासन-व्यवस्था जारी कर चुके हैं। मुझे संदेह नहीं है कि देश की आम प्रगति, प्रत्येक राज्य को अपनी सरकार में उत्तरदायित्व का कुछ न कुछ अंश रखने के लिये बाध्य करेगी। और ऐसी स्थिति के आने पर तो, दण्ड-स्थगन तथा क्षमा-दान के अधिकार का जो प्रयोग करेगा, वह शासक न होगा, बल्कि राज्य का मंत्रिमंडल होगा जो शासक को परामर्श देगा और 'शासक' उसके परामर्श से क्षमा-दान करेगा। एक उदाहरण विचार में आता है; हो सकता है कि एक विशेष प्रकार के अपराधी को जेल में रहने देना किसी प्रान्त या राज्य के अनुकूल न हो। युद्ध-काल का एक मामला लीजिये; ऐसे मामले आयरलैंड तथा इंग्लैंड में हुये हैं, पर मैं उनका विवरण देना नहीं चाहता। युद्ध में प्रायः ऐसा हुआ है कि राज्य-विरोधी कुछ अपराधों के सम्बन्ध में विभिन्न मत निर्धारित किये गये हैं। ऐसी हालत में क्या होगा, यदि केन्द्र की इच्छा तथा नीति के विरुद्ध यूनिटों के मंत्रिमंडल, दण्ड-स्थगन अथवा क्षमा-दान स्वीकार करने का कार्य स्वयं अपने हाथ में ले लें? यदि राज्यों तथा केन्द्र की नीतियां विभिन्न प्रकार की हैं और राज्य एक श्रेणी के अपराधों के लिये दण्ड-स्थगन स्वीकार करना चाहते हैं—और जैसा कि आप जानते ही हैं, दण्ड-स्थगन का अर्थ किसी सजा का मुल्तवी करना है—तथा यदि यह ताकत 'अध्यक्ष' को नहीं बल्कि गवर्नर या 'शासक' को सौंपी गयी है, तो इससे जटिल समस्यायें पैदा हो जायेंगी। इसलिये मेरी अर्ज है कि संघ-सरकार के विरुद्ध एक अपराध, वास्तव में पूरी 'यूनियन' का एक नागरिक होने के नाते संघ-सरकार के प्रति प्रत्येक नागरिक की राज-भक्ति पर आधारित है। अतएव, इस सिद्धान्त के अनुरूप, दण्ड-स्थगन तथा क्षमा-दान की ताकत का संघ-सरकार के अध्यक्ष में स्थिर रहना आवश्यक है और वह उससे पृथक नहीं की जा सकती है।

अन्य बातों के सम्बन्ध में तो श्री अनन्तशयनम् आयंगर का संशोधन है ही। यदि मेम्बरों की इच्छा है कि मौत की सजाओं के सम्बन्ध में प्रान्तों को, 'अध्यक्ष' के साथ समवर्ती अधिकार रहना चाहिये, तो इसमें कोई कठिनाई नहीं है। अब रहा राज्यों के सम्बन्ध में, सो मैं अपनी ओर से इसके लिये बहुत उत्सुक नहीं हूं कि राज्य-कानूनों के विषय में, अध्यक्ष को कोई समवर्ती अधिकार दिये जाने चाहियें। पर हमें एक अति महत्वपूर्ण बात नहीं भूलनी चाहिये। राज्य दो प्रकार के हैं, छोटे और बड़े। संघ में सम्मिलित होने वाले राज्य, उन बड़े राज्यों की

[श्री के.एम. मुंशी]

बराबरी के नहीं हैं, जिनके प्रतिनिधियों को आप यहां अग्रिम पंक्तियों में बैठे देख रहे हैं। ऐसे राज्य भी हैं, जो मौजूदा स्थितियों में प्रभुशक्ति के किसी-न-किसी प्रतिनिधि की अनुमति बिना, मौत की सजा देने के अधिकारी नहीं हैं। मैं वस्तुतः जानता हूं कि बहुतेरे छोटे राज्य जब मौत की सजा देते भी हैं, तो उन पर प्रभुशक्ति के प्रतिनिधि से प्रभाव डलवाया जाता है। इसलिये, सारे देश को मिलकर इस बात पर विचार करना है कि क्या उन बहुत छोटे राज्यों को, जो ऐसी ताकत का उपभोग नहीं करते, स्वेच्छानुसार तथा अनियंत्रित रूप में प्राण-दण्ड देने और दण्ड-स्थगन तथा क्षमा-दान स्वीकार करने का निःसीम अधिकार दिया जाना चाहिये। ये ही जटिलतायें हैं, तो पूर्ण रूप से विचार किये जाने के लिये एक कमेटी को सौंपी जा सकती हैं। किन्तु प्रथम तथा मूल प्रश्न के बारे में मेरी अर्ज है कि संघ-कानून सम्बन्धी सारे मामलों में दण्ड-स्थगन तथा क्षमा-दान स्वीकार करने का अधिकार 'अध्यक्ष' से छीन लेना, संघ-सरकार के प्रति एक नागरिक की प्रत्यक्ष राज-भक्ति के साथ हस्तक्षेप करना है। श्रीमान्, यही मेरी अर्ज है।

***सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** श्रीमान्, सर गोपालस्वामी आयंगर द्वारा इतने योग्यता-पूर्वक पेश की गयी तजवीज के समर्थन में तथा श्री अनन्तशयनम् आयंगर के संशोधन के भी समर्थन में, मैं कुछ शब्द बोलना चाहता हूं। पहले तो मुझे इउ बात का हर्ष है कि कुछ राज्यों के प्रजाप्रिय प्रतिनिधि आगे बढ़े हैं और उन्होंने इस तजवीज का समर्थन किया है कि संघ-शासन प्रणाली का यह प्रकृत परिणाम है कि संघ-शासन के 'अध्यक्ष' को क्षमा-दान का जन्मजात अधिकार रहना चाहिये।

एक माननीय सदस्यः श्रीमान, क्या मैं जान सकता हूं कि 'प्रजा-प्रिय प्रतिनिधि' शब्दों में क्या आक्षेप निहित है? क्या अन्य लोग प्रजा-अप्रिय प्रतिनिधि हैं?

***सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि अन्य लोग प्रजा-अप्रिय-प्रतिनिधि हैं, किन्तु मैं नहीं मानता कि अफसर लोग प्रजा-प्रिय प्रतिनिधि हैं, क्योंकि मेरा विश्वास है कि कुछ राज्यों का प्रतिनिधित्व शासकों के प्रतिनिधियों और प्रजा के प्रतिनिधियों के बीच बटा हुआ है। इसमें शक नहीं कि दोनों ही, राज्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, किन्तु व्यावहारिक तथा सामान्य बुद्धि की दृष्टि से, प्रतिनिधियों की इन दोनों श्रेणियों में अन्तर है। आप चाहें तो, मेरी बात को इस उक्ति या संशोधन के साथ समझ सकते हैं; पर इस

बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि जिस भाव से मैं उन शब्दों का प्रयोग करता हूं उस अर्थ में, इन प्रजा-प्रिय-प्रतिनिधियों और सरकार या शासक द्वारा चुने गये एक प्रतिनिधि में बहुत बड़ा फर्क है।

***श्री एच.आर. गुरुव रेड्डी** (मैसूर): हम सभी लोग निर्वाचित हैं, न कि नामज़द।

***डा. बी. पट्टाभि सीतारमैया** (मद्रास: जनरल): मैं व्यवस्था-सम्बन्धी एक बात कहना चाहता हूं। ये प्रश्न मुख्य बात से पृथक हैं। मैं चाहता हूं कि पार्श्व-प्रश्न न उठाये जायें और न उन पर बहस हो। आप श्रीमान्, ऐसा न होने दें।

***सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** राज्य, एक 'संघीय यूनियन' के मेम्बरों की हैसियत से शामिल हो रहे हैं।

***सर बी.एल. मित्तर:** श्रीमान्, व्यवस्था-सम्बन्धी एक बात है। मैंने अपना संशोधन वापस लेने की अनुमति मांगी है। इसलिये इस तर्क पर बहस की आवश्यकता नहीं है कि आया राज्यों को यह ताकत रहनी चाहिये या नहीं।

***सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** उदाहरणार्थ, काठियावाड़ के प्रतिनिधि ने कुछ ऐसे भाषण किये हैं कि 'अध्यक्ष' को ये ताकत न रहनी चाहिये।

***अध्यक्ष:** कठिनाई यह है कि यद्यपि सर बी. एल. मित्तर ने अपना संशोधन वापस लेने के लिये सभा की अनुमति मांगी है, पर एक मेम्बर ने ऐसी अनुमति दिये जाने पर आपत्ति की है। मामला, यहां आकर रुक गया है।

***सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** यदि संशोधन वापस लेने की अनुमति दे दी गयी होती, तो किये गये बहुतेरे भाषण, जिनमें श्री मुंशी की वक्तृता भी सम्मिलित है, व्यवस्था के प्रतिकूल हो जाते। यदि वास्तव में सब लोग एक ही बात पर राजी हैं, तो बहस की एकदम जरूरत ही न थी।

संघ-शासन प्रणाली का प्रथम सिद्धान्त यह है कि संघ-कानून से प्रत्येक नागरिक बंधा है और एक नागरिक तथा संघ-सरकार के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। और संघ-कानून का उल्लंघन होने पर, संघ-शासन के प्रतिनिधि अर्थात् अध्यक्ष को उस संघ-कानून के विरुद्ध किसी अपराध को क्षमा करने का जन्मजात अधिकार अवश्य रहना चाहिये। सर एन. गोपालस्वामी आयंगर के संशोधन का यही सिद्धान्त है। सर्व-सत्ता के सम्बन्ध में कोई प्रश्न उठाने की कोई बात ही नहीं है, क्योंकि राज्य

[सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

वैसे चाहे जो हों, एक बार जब वे संघ-शासन में सम्मिलित हो जाते हैं, तो 'यूनियन' को सौंपे गये विषयों के सम्बन्ध में उस सीमा तक वे अपनी सर्व-सत्ता का समर्पण भी करते हैं। राज्य, इतने से संतोष कर सकते हैं कि अन्य सारे मामलों में उन्हें सर्व-सत्ता के पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं; किन्तु जो विषय वे यूनियन को सौंपते हैं उनके सम्बन्ध में उनकी सर्व-सत्ता-सम्पन्नता समाप्त हो जाती है। किसी राज्य के 'शासक' या राज्य की प्रजा के प्रति उक्त विषयों के सम्बन्ध में सर्व-सत्ता का प्रतिबन्धित होना, सम्मान के विरुद्ध नहीं है, क्योंकि यह तो किसी भी संघ-व्यवस्था का सार ही है। अमेरिकन यूनियन के महान् राज्य बहुत से विषयों में अब भी सर्व-सत्ता सम्पन्न हैं, किन्तु संघीय क्षेत्र में उन्हें सर्व-सत्ता प्राप्त नहीं है। सभी संघीय विधानों का यही स्वीकृत सिद्धान्त है। प्रस्तुत संशोधन केवल संघ-कानूनों के विरुद्ध अपराधों के सम्बन्ध में है। यदि इस पर किसी को कोई आपत्ति हो सकती है तो वह प्रान्तों को हो सकती है, क्योंकि प्रान्तीय सरकारों को संघीय विषयों के सम्बन्ध में क्षमा-दान की ताकत अब तक प्राप्त थी। राज्यों को संघीय आधार पर प्रान्तों के समान अवस्थित करने के ही लिये केवल प्रान्तीय प्रतिनिधि, संघीय विषय सम्बन्धी क्षमा-दान की ताकत, यूनियन के 'अध्यक्ष' में पूर्णतः स्थिर होने देने को राज़ी हैं। यदि कोई रिआयत की जा रही है, तो वह प्रान्तों के अधिकार-समर्पण द्वारा ही की जा रही है। वे अपना एक ऐसा अधिकार त्याग रहे हैं, जिसका प्रयोग वे वर्तमान भारत-शासन-विधान के अनुसार अब तक करते आये हैं। साथ ही, यह भी साफ तौर से समझ लिया जाना चाहिये कि जब प्रान्तीय विधान तैयार हो, तो समवर्ती तथा प्रान्तीय सूची के विषयों के सम्बन्ध में क्षमा-दान का अधिकार, प्रान्तीय गवर्नरों को प्रदान किया जाये। जहां तक इन विषयों का ताल्लुक है, क्षमा-दान की ताकत प्रान्तीय सरकार के प्रधान में अवस्थित करने के सम्बन्ध में उक्त विधान में इसी प्रकार की व्यवस्था अवश्य रखी जानी चाहिये।

सर एन. गोपालस्वामी आयंगर ने आश्वासन दिया है, और यह आश्वासन उसी भाव से दिया गया है जिस भाव से कोई भी वक्ता किसी प्रस्ताव के सम्बन्ध में आश्वासन दे सकता है कि बाद में उपयुक्त अवसर आने पर इस मामले पर विचार किया जायगा तथा उस सम्बन्ध में संशोधन का आवश्यक प्रस्ताव रखा जायगा। यह प्रान्तीय क्षेत्र के विषय में है।

अब, केवल प्राण-दण्ड सम्बन्धी बात रह जाती है। ख्याल किया गया कि यद्यपि तर्कतः प्राण-दण्डों के सम्बन्ध में कोई अपवाद रखने की आवश्यकता नहीं है,

किन्तु इस विचार से कि एक प्रान्त के नागरिक ने अब तक इस विशेषाधिकार का उपभोग किया है, उसे केन्द्र व प्रान्त दोनों की सहायता के आवेदन के विशेषाधिकार से वंचित करना अकारण समझा गया। श्री अनन्तशयनम् आयंगर के संशोधन का यही भाव है, और मैं उसका समर्थन करता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, सभापति महोदय! इस विषय के, जिसकी बहस में दबी हुई सी गर्मी भी पैदा हो गयी है, मैं केवल एक पहलू पर कुछ बोलना चाहता हूं। वह यह है कि हम उन राज्यों के मामले पर विचार कर रहे हैं, जो रक्षा-व्यवस्था, पर-राष्ट्र विषय तथा यातायात (कम्यूनिकेशन्स) के तीन विषयों के सम्बन्ध में संघ-शासन में सम्मिलित हो रहे हैं। सभी संघीय विधानों का यह सिद्धान्त है कि इन विषयों से सम्बन्ध रखने वाले अपराध भी उसी अधिकार-सीमा के अन्दर होने चाहियें ताकि संघ-शासन उन विषयों का काम-काज चला सके जो उसके सुपुर्द किये गये हैं। जरूरी है कि कुछ कर भी उसके जिम्मे दिये जायें, और वस्तुतः इन करों से सम्बन्ध रखने वाले अपराधों को भी, संघ-शासन को ही निपटाना चाहिये।

अब, श्रीमान्, मेरी अर्ज़ है कि जब कोई राज्य संघ-शासन में शामिल होता है, तो वह राज्य अपनी सारी सर्व-सत्ता तथा ताकत संघ-शासन को पूर्णतः समर्पित कर देता है, और इसका अर्थ यही निकलता है कि कुछ विषयों से सम्बन्ध रखने वाले अपराधों तथा उन विषयों की कर-व्यवस्था से सम्बन्ध रखने वाले अपराधों का अधिकार-क्षेत्र भी, वह समर्पित कर देता है। और यदि स्थिति ऐसी है तो यह एक स्वेच्छा-पूर्ण समर्पण का कार्य है। इस सम्बन्ध में कोई भी भ्रम न रहना चाहिये कि इस ताकत के समर्पण में, अपराधों को क्षमा करने अथवा सजा को बदल देने के सर्व-सत्ता-पूर्ण अधिकारों का समर्पण भी सम्मिलित है। परिस्थिति ऐसी होते हुये, मेरी अर्ज़ है कि इस सम्बन्ध में जो विवाद उठ खड़ा हुआ है तथा भावावेश-पूर्ण जो बातें कही गयी हैं, केवल गलतफहमी से ही हुई हैं। मेरा निवेदन है कि यदि इस समस्या पर इस दृष्टि-बिन्दु से देखा जाये कि कुछ आवश्यक ताकतों का समर्पण हुआ है, तो उससे यही निष्कर्ष निकलता है कि क्षमा-दान तथा अन्य ताकतें 'यूनियन' के 'अध्यक्ष' में ही अव्यवस्थित होनी चाहियें। इस विषय पर मुझे इतना ही कहना है।

***श्री सत्यनारायण सिन्हा** (बिहारः जनरल): श्रीमान्, अब सभा से प्रश्न किया जा सकता है।

***अध्यक्षः** प्रश्न है कि अब सभा से प्रश्न किया जाये।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगरः** श्रीमान्, बहस के उत्तर के रूप में मुझे बहुत कम कहना है। मेरे संशोधन के प्रस्ताव की कुछ सदस्यों ने जो आलोचना की थी, उसका उत्तर अन्य सदस्यों ने बहुत ही संतोषजनक रूप में दे दिया है। अतएव, मेरे कुछ कहने की वास्तव में बहुत कम गुंजाइश है।

श्री अनन्तशयनम् आयंगर के संशोधन के सम्बन्ध में केवल दो बातों का उल्लेख करने की जरूरत है। एक यह है कि यदि यह संशोधन उनकी तज़वीज के मुताबिक, केवल प्रान्तों तक के ही लिये सीमित रखा जाता है, तो इससे प्रान्तों और राज्यों का विभेद उत्पन्न हो जायेगा। यह पहली बात है। दूसरी बात यह है कि उस प्रकार, प्रान्तों से हम उस ताकत में से कुछ और ले लेंगे जो मेरा संशोधन उन्हें पूर्णतः प्रदान करता। पर यह छोटी-सी बात है। यदि सभा सहमत है कि मौत की सजाओं के मामले में, संघ-शासन के अध्यक्ष को केवल प्रान्तों के ही साथ समवर्ती सत्ता प्राप्त रहनी चाहिये, तो मैं अपनी ओर से इस पर कोई आपत्ति न करूंगा। राज्यों को इस मामले में अपना रास्ता खुद पसन्द करने के लिये हम स्वतंत्र छोड़ देंगे।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर मत (वोट) लूंगा। पहला संशोधन श्री अनन्तशयनम् आयंगर का है, कि सर गोपालस्वामी आयंगर द्वारा प्रस्तावित संशोधन के अन्त में, निम्नलिखित जोड़ दिया जाये:

> ''जहां किसी प्रान्त में किसी व्यक्ति को मौत की सज़ा दी गयी हो, अध्यक्ष को सजायें मुल्तवी करने, उनमें छूट देने तथा उन्हें बदलने की वे सारी ताकतें प्राप्त रहेंगी, जो उस प्रान्त के गवर्नर को प्राप्त हों।''

संशोधन सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** अब मैं सर गोपालस्वामी आयंगर के संशोधन को, श्री अनन्तशयनम् आयंगर द्वारा संशोधित रूप में, मत-दान के लिये रखूंगा।

संशोधित संशोधन सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** अब मैं मूल वाक्यांश को, उसके संशोधित रूप में मत के लिये रखूंगा।

वाक्यांश 7 संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** अब हम वाक्यांश 14 पर विचार करेंगे।

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगरः** श्रीमान्, इस वाक्यांश को मैं पहले ही सभा के सामने पढ़ चुका हूं, और मैं नहीं समझता कि अब मुझे उसे फिर पढ़ने की आवश्यकता है। इस वाक्यांश विशेष के सम्बन्ध में बहुतेरे संशोधनों की सूचना दी गयी थी और स्वाभाविकतः इस बात की कोशिश की गयी है कि क्या इन संशोधनों के रूप में व्यक्त किये विभिन्न दृष्टि-बिन्दु एक में मिलाये जा सकते हैं और सभा द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकार किये जाने के लिये, समझौते से तय कोई व्यवस्था उसके सामने पेश की जा सकती है। श्रीमान्, आज सवेरे मैंने एक संशोधन की सूचना देने की स्वतंत्रता का उपयोग किया है जो मेरी समझ में, उपस्थित कठिनाइयों का सम्मत हल मालूम देता है। यदि सभा चाहे कि मैं यह संशोधन पेश करूं और यदि वह स्वीकार हो जाये, तो अन्य संशोधन पेश करने की आवश्यकता नहीं है। मैं इसे पेश करने को तैयार हूं।

***अध्यक्षः** कृपया इसे पेश कीजिये। अथवा, क्या आपका खयाल है कि हम लोग दूसरे संशोधनों पर विचार करें?

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगरः** यदि यह संशोधन स्वीकार कर लिया गया, तो मेरा खयाल है कि अन्य संशोधनों को पेश करने की कोई जरूरत न रहेगी।

श्रीमान्, जो संशोधन मैं पेश करना चाहता हूं, यह है कि वाक्यांश 14 के उपवाक्यांश (1) की (ए), (बी) तथा (सी) मदों के स्थान में, निम्नलिखित रखा जाये:

''(ए) 'राज-सभा' का संख्या-बल इस रूप में निर्धारित किया जायेगा कि वह, लोक-सभा के संख्या-बल के आधे से अधिक न हो। कार्य-मूलक निर्वाचन क्षेत्रों (फंक्शनल कांस्टिटुएंसीज़) द्वारा अथवा सन् 1937 के आयरिश विधान की 18 (7) धारा की व्यवस्था के अनुरूप निर्मित मण्डलों (पैनेल्स) द्वारा 'राज-सभा' के 25 से अधिक मेम्बर न निर्वाचित होंगे। 'राज-सभा' के मेम्बरों का शेषांश, 'यूनिटों' के प्रतिनिधि निर्वाचन-क्षेत्रों द्वारा, सविवरण निश्चित किये जाने वाले पैमाने के हिसाब से निर्वाचित होंगे।

शर्त यह है कि देशी राज्यों का कुल प्रतिनिधित्व, इस शेषांश के 40 प्रतिशत से अधिक न हो।

[माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर]

स्पष्टीकरण–'यूनिट' से अर्थ है एक प्रान्त या देशी राज्य का, जो स्वयं अपने व्यक्तिगत अधिकार से संघीय पार्लियामेंट के लिये मेम्बर चुन कर भेजता है। उन देशी राज्यों के सम्बन्ध में, 'राज-सभा' में प्रतिनिधि भेजने के लिये जिनकी एक साथ गुटबन्दी हुई है, 'यूनिट' का अर्थ इस प्रकार निर्मित गुट से है।

(बी) 'राज-सभा' के लिये हर 'यूनिट' के प्रतिनिधि, उस 'यूनिट' के व्यवस्थापक-मंडल के निर्वाचित मेम्बरों द्वारा चुने जायेंगे, और जहां यह व्यवस्थापक-मंडल दो सभाओं का होगा, वहां, उस व्यवस्थापक-मंडल की निम्नसभा के निर्वाचित मेम्बरों द्वारा चुने जायेंगे।

(सी) 'लोक-सभा' का संख्या-बल इस रूप में निश्चित किया जायेगा कि वह 500 से अधिक न हो। संघ-शासन के यूनिट (इकाइयां), चाहे वे प्रान्त हों या देशी राज्य हों या देशी राज्यों के गुट हों, निर्वाचन-क्षेत्रों में विभक्त किये जायेंगे, और हर निर्वाचन-क्षेत्र के प्रतिनिधियों की संख्या इस भांति निर्धारित की जायेगी कि यह पक्का रहे कि आबादी के प्रत्येक 7,50,000 के लिये एक से कम और प्रत्येक 5,00,000 के लिये एक से अधिक प्रतिनिधि न रहेगा।

शर्त है कि देशी राज्यों की कुल आबादी से उनके प्रतिनिधियों की कुल संख्या का अनुपात, प्रान्तों की कुल आबादी से उनके प्रतिनिधियों की कुल संख्या के अनुपात से अधिक न होगा।''

(2) यह कि वाक्यांश 14 के उप-वाक्यांश (1) में, निम्नलिखित नयी मद (ई) शामिल कर ली जाये:

''(ई) राज-सभा तथा लोक-सभा के वास्तविक संख्या-बल का निर्धारण, संघ-शासन के यूनिटों के बीच इस प्रकार निर्धारित संख्या-बल का विभाजन, राज-सभा के लिये कार्यात्मक मण्डलों अथवा निर्वाचन-क्षेत्रों की संख्या, प्रकृति तथा गठन का निश्चय, वह तरीका जिसके अनुसार दोनों सभाओं के निमित्त निर्वाचन के लिये, छोटे राज्यों की गुटबन्दी से 'यूनिट' कायम किये जायें, वे सिद्धान्त, जिनके आधार पर दोनों सभाओं के निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमायें निर्धारित की जायें और अन्य सम्बन्धित बातें 'यूनियन विधान कमेटी' के विचारार्थ वापस भेजी जायेंगी तथा वह कमेटी उनकी जांच करेगी। इस प्रकार की जांच के बाद, 'यूनियन विधान-कमेटी' इन विषयों की व्यवस्था सम्बन्धी अपनी सिफारिशें विधान-परिषद् के सभापति के पास दाखिल करेगी, जिन्हें यूनियन-विधान के मस्विदे में शामिल कर लिया जाना चाहिये।''

श्रीमान्, मैं इस संशोधन के मस्विदे के अधिक महत्वपूर्ण पहलुओं की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। श्रीमान्, पहली बात, जिसका कि मैं हवाला देना चाहता हूं, यह है कि इस संशोधन में हम राज-सभा का संख्या-बल निश्चित रूप में तय कर रहे हैं और ऐसा करने के लिये हमारा कहना है कि उक्त संख्या बल लोक-सभा के संख्या-बल के आधे से अधिक न होना चाहिये। श्रीमान् मैं समझता हूं कि 'सभा' इस बात से राजी होगी कि निश्चित करने के लिये यह अच्छा अनुपात है। अब इस प्रकार निश्चित किये जाने वाले संख्या-बल में से हम 25 मेम्बर कार्यात्मक निर्वाचन-क्षेत्रों के लिये रखने का विचार करते हैं। याद होगा कि जो मस्विदा मूल में सभा के सामने रखा गया था, उसके अनुसार 10 सीटें विश्वविद्यालयों तथा वैज्ञानिक संस्थाओं के परामर्श से अध्यक्ष द्वारा नामजदगी से भरी जाने को थीं। बहुत भारी संख्या में लोगों ने महसूस किया है कि उन लोगों को राज-सभा में लाने के लिये यह व्यवस्था पर्याप्त नहीं है, जो विश्वविद्यालयों या वैज्ञानिक संस्थाओं के लोग भले ही न हों, किन्तु जो राष्ट्र की कार्रवाइयों के अति महत्वपूर्ण पक्षों से सम्बन्धित होने के कारण इस प्रकार की 'सभा' में रखे जाने के सर्वथा योग्य हैं। इस सम्बन्ध में आयरिश विधान की 18 (7) धारा का हवाला दिया गया है। जैसा कि आप जानते हैं, आयरिश विधान के 'सेनेट' का अधिकांश इस प्रकार के कार्यात्मक निर्वाचन-क्षेत्रों से भरा जाता है। ये निर्वाचन-क्षेत्र संस्कृति, शिक्षा, वाणिज्य-व्यवसाय, कृषि, मजूर, सामाजिक सेवा-व्यवस्थाओं तथा इसी प्रकार की विभिन्न अन्य कार्रवाइयों के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध के हैं। आयरिश विधान की व्यवस्था और उस व्यवस्था में जिसका कि प्रस्ताव यहां के लिये किया गया है, एक बड़ा अन्तर यह है कि वह सिद्धान्त हमारे यहां राज-सभा के केवल बहुत थोड़े मेम्बरों के लिये लागू होगा। यदि लोक-सभा का अधिकतम संख्या-बल हम 500 निर्धारित करें, तो राज-सभा का संख्या-बल केवल 250 ही हो सकता है। यदि इसमें से 25 जगहें हम इस प्रकार के निर्वाचन-क्षेत्रों से भरी जाने के लिये निकाल लें, तो वे कुल संख्या-बल का केवल दस प्रतिशत ही होती हैं और इस प्रकार लोक-सभा का स्वरूप मूल योजना के अनुरूप भी कायम रहता है। राज-सभा के मेम्बरों का बहुत बड़ा भाग 'यूनिटों' द्वारा न्यूनाधिक प्रादेशिक आधार पर चुनकर भेजा जायेगा, जब कि बहुत ही कम संख्या में जो दस प्रतिशत से अधिक न होगी, कुछ मेम्बर इस विशेष प्रकार के निर्वाचन-क्षेत्रों द्वारा चुनकर

[माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर]

भेजे जायेंगे। राज-सभा में देशी राज्यों के प्रतिनिधित्व को हमने एक अन्य तरीके से भी सीमित कर दिया है। इस संशोधन में कहा गया है कि देशी राज्यों को दिया गया कुल प्रतिनिधित्व राज-सभा के संख्या-बल के 40 प्रतिशत में से विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों की संख्या घटाने के बाद जो संख्या आये, उससे अधिक न होना चाहिये।

अब श्रीमान्, मैं इस नये उप-वाक्यांश की मद (बी) का उल्लेख करूंगा। इसमें मूल वाक्यांश की मद (बी) प्रायः ज्यों की त्यों रख दी गयी है। महत्व का केवल एक ही अन्तर है, वह यह कि निर्वाचन व्यवस्थापक मण्डल के निर्वाचित मेम्बरों द्वारा होना चाहिये। और यदि किसी 'यूनिट' का व्यवस्थापक-मण्डल दो सभाओं का है, तो उक्त निर्वाचन उस व्यवस्थापक-मण्डल की निम्नसभा के निर्वाचन मेम्बरों द्वारा होना चाहिये। मुझे यह भी स्पष्ट कर देना चाहिये कि इस संशोधन में मैंने 'निम्न सभा' नाम ज्यों का त्यों रखा है, जो इस मस्विदा विशेष में अन्य स्थान में प्रयुक्त नाम के अनुकूल है। जो सभा (चैम्बर) हम सब लोगों के दिमाग में है, उसका नाम यह न रखकर और कुछ रखने का विचार है, जिसकी कि इस प्रकार की आलोचना न की जा सके।

अब श्रीमान्, 'लोक-सभा' के सम्बन्ध में अधिकतम संख्या-बल का निश्चय पांच-सौ किया गया है और 10,00,000 तथा 7,50,000 की सीमाएं, जो मूल मस्विदे में रखी गयी हैं, कम करके 7,50,000 तथा 5,00,000 कर दी गयी हैं। परिणामस्वरूप इसके द्वारा वे अनेक संशोधन, जिनकी सूचना दी गयी है और न्यूनाधिक जिनमें वही बातें हैं, स्वीकार कर लिये गये हैं।

अब श्रीमान्, हम मद (सी) के शर्तनामे पर पहुंचते हैं। सम्भवतः कुछ लोग इसे अधिक आवश्यक न समझेंगे, किन्तु भय या यों कहिये कि शंकायें दूर करने के लिये निश्चय किया गया है कि इस प्रकार का शर्तनामा रखना अच्छा होगा। 'लोक-सभा' अनिवार्यतः एक वह सभा है, जिसका सदस्यगण पूर्णतः आबादी पर आधारित है और यह उचित ही है कि देशी राज्यों की कुल आबादी से उनका प्रतिनिधित्व करने वाले कुल मेम्बरों की संख्या का अनुपात प्रांतों की कुल आबादी से उनकी सीटों की संख्या के अनुपात से अधिक न होना चाहिये। इसलिये मैं नहीं समझता कि इसका औचित्य सिद्ध करने की कोई आवश्यकता है। संघ-शासन के यूनिटों को, चाहे वे प्रान्त हों या देशी राज्य, हम जो भी विशेष सुविधा देना चाहते हों, वह 'राज-सभा' के सदस्यगण के अन्तर्गत दे दी जायेगी।

अब श्रीमान्, दोनों सभाओं के सदस्यगण के सम्बन्ध में ये साधारण सिद्धान्त बताने के बाद यह जरूरी है कि उनका विस्तार किया जाये और वे ऐसे रूप में रखे जायें, जो भविष्य के लिये निर्मित किये जाने वाले विधान के मस्विदे में लाये जा सकें। इस सिलसिले में बहुत-सी स्थूल बातें निबटानी होंगी, जैसे दोनों सभाओं के वास्तविक संख्या-बल का निश्चय, यूनिटों के बीच यह संख्या-बल जिस प्रकार बांटा जाना चाहिये वह तरीका, विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों का प्रकार तथा सदस्यगण और वे सिद्धान्त जिनके आधार पर देशी राज्यों के निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमायें निर्धारित की जानी चाहियें। ये सब बड़ी महत्वपूर्ण बातें हैं, जिनके सम्बन्ध में विधान को कुछ आधारभूत सिद्धान्त स्थिर करने होंगे। इसी अभिप्राय से मैंने (ई) की एक अतिरिक्त मद रखी है, जिसके द्वारा 'यूनियन विधान कमेटी' को इन प्रश्नों की सविस्तार जांच करने और उसके बाद ऐसे वाक्यांशों या धाराओं की जो नये विधान के मस्विदे में शामिल की जा सकें, तजवीज करने का कार्य सौंपा गया है। निश्चय ही सभा के विचार के लिये वह सामने आयेगा। 'यूनियन विधान कमेटी' अपनी रिपोर्ट 'अध्यक्ष' को देगी, तब वह रिपोर्ट वस्तुतः इस सभा की सम्पत्ति हो जाती है। यदि यह निश्चय किया जाये कि उक्त 'कमेटी' की सिफारिशें विधान के मस्विदे में शामिल की जाने से पहले सभा को इस रिपोर्ट पर विचार कर लेना चाहिये, तो अगले अधिवेशन में इस प्रकार विचार भी किया जा सकता है। किन्तु यदि 'सभा' राजी हो कि इन बातों के सम्बन्ध में 'यूनियन विधान कमेटी' की सिफारिशें यूनियन-विधान के मस्विदे में सीधे शामिल की जा सकती हैं, तो भी प्रस्तावित व्यवस्था की अच्छाई-बुराई की जांच करने का मौका सभा को उस समय मिलेगा, जब वह विधान के मस्विदे पर विचार करेगी।

श्रीमान्, मैं इस संशोधन का प्रस्ताव रखता हूं।

***अध्यक्षः** मेरे पास इस वाक्यांश के अनेक संशोधन हैं। अब मैं इन्हें एक-एक करके रखूंगा।

(सर्वश्री जगतनारायणलाल, एच.वी. पातस्कर, बी.एम. गुप्ते, आर.एम. नलवाड़े, सेठ गोविन्ददास, जी एल. मेहता ने अपने नम्बर 232 से 237 तक संशोधन नहीं पेश किये।)

***डा. मोहन सिंह मेहता** (उदयपुर): मैं अपना संशोधन (नं. 238) वापस लेता हूं।

***कर्नल बी.एच. जैदी** (संयुक्त प्रान्तीय राज्य: समूह 1): मैं अपना संशोधन (नम्बर 239) वापस लेता हूं।

***महाराज नगेन्द्र सिंह** (पूर्वी राजपूताना राज्य समूह): श्रीमान् सभापति महोदय, सर गोपालस्वामी आयंगर के संशोधन से छोटे राज्यों का दृष्टि-बिंदु प्रशसनीय ढंग से पूरा हो जाता है। इस संशोधन के लिये उन्हें बधाई देना आवश्यक है, क्योंकि उससे प्रभावकारी लोकतंत्र उत्पन्न होता है। सब कुछ होते हुये भी श्रीमान्, एक विधान की महानता तथा संतुलन देश के विभिन्न स्वार्थों और हस्तियों के विवरण के लिये उसके अधिक से अधिक ध्यान से व्यवस्था करने में होती है। प्रस्तुत संशोधन से निश्चय ही इस उद्देश्य की पूर्ति होगी। मैं हृदय से उसका समर्थन करता हूं और इसलिये अपने संशोधन को वापस लेता हूं। किन्तु श्रीमान्, जहां तक राज्यों के बीच सीटों के बंटवारे पर विचार करने का प्रश्न है, मेरी प्रार्थना है कि 'यूनियन विधान कमेटी' में छोटे राज्यों के भी कुछ प्रतिनिधि होने चाहियें। छोटे राज्यों की ग्रुपबन्दी तथा निर्वाचन-क्षेत्रों का निश्चय करने का असर इन राज्यों पर अनिवार्य रूप से पड़ेगा। इसलिये इन राज्यों के ख्याल से यह बहुत जरूरी है कि छोटे राज्यों का मत व्यक्त करने के लिये 'यूनियन विधान कमेटी' में उनका भी एक प्रतिनिधि होना चाहिये।

मैं अपना संशोधन (नम्बर 239) वापस लेता हूं।

(सर्वश्री रायसाहब रघुराजसिंह तथा एच.जे. खाण्डेकर ने अपने संशोधन नम्बर 239 तथा 240 पेश नहीं किये।)

***श्री हिम्मतसिंह के. महेश्वरी:** मैं अपना संशोधन (नम्बर 241) वापस लेता हूं।

(नम्बर 242 से लेकर नम्बर 260 तक के संशोधन पेश नहीं किये गये।)

***श्री विश्वम्भर दयाल त्रिपाठी:** अध्यक्ष महोदय, मेरे संशोधन का अभिप्राय सर गोपालस्वामी आयंगर के प्रस्ताव से पूरा हो जाता है, अत: मैं अपना संशोध न पेश करना नहीं चाहता।

(संशोधन नम्बर 262 पेश नहीं किया गया।)

(सर वी.टी. कृष्णमाचार्य ने अपना संशोधन नम्बर 263 पेश नहीं किया।)

***अध्यक्षः** मैं माने लेता हूं कि अन्य कोई 'मन्त्री' भी पेश नहीं कर रहे हैं।

***सर वी.टी. कृष्णमाचारी** (जयपुर): जी, हां।

(नम्बर 264 से लेकर नम्बर 271 तक के संशोधन भी पेश नहीं किये गये।)

***श्री नजीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान् सभापति महोदय, मैं प्रस्ताव रखता हूं कि:

''वाक्यांश 14 का उपवाक्यांश (2) निकाल दिया जाये।''

इस संशोधन का सीधा-सादा मकसद यह है कि उक्त उपवाक्यांश में ऐसे परिशिष्ट का हवाला है, जिसका अभी अस्तित्व ही नहीं है। उपवाक्यांश (2) रखने के लिये राजी होना एक कोरी चैक या बिना परिशिष्ट के दस्तावेज पर हस्ताक्षर करने के समान होगा। मेरी अर्ज है कि यह करना कठिन कार्य है।

फिर मैं देखता हूं कि मेरे माननीय मित्र सर गोपालस्वामी आयंगर के संशोधन के बाद परिवर्तित दशा में यह संशोधन बे-मेल स्थिति में हो जाता है। हमारे बहुत से संशोधनों की सूचना देने के बाद मूल वाक्यांश का मस्विदा फिर से तैयार करके यहां इस सभा के सामने रखा गया। हमें इस मस्विदे पर विचार कर सकने का मौका ही नहीं मिला। जो संशोधित मस्विदा विचारार्थ उपस्थित किया गया है, उस पर मुझे कोई विशेष आपत्ति नहीं है। किन्तु फिर भी मुझे समझना चाहिये कि इस महत्वपूर्ण विषय पर विचार करने के लिये हमें कुछ समय देना शायद अधिक अच्छा होता। इस प्रकार की जटिल प्रकृति वाले मस्विदे पर जिसमें महत्व के वैधानिक सिद्धान्त हैं, क्षण भर की सूचना पर आसानी से विचार नहीं किया जा सकता। अतएव सविनय मेरा निवेदन है कि जैसा कि अन्य महत्वपूर्ण मामले में किया जाता है, इस विषय पर विचार करने के लिये कुछ समय दिया जाना चाहिये; और तब संशोधन पेश करना हमारे लिये आसान होगा। हो सकता है कि सिद्धान्तों से हम पूर्णतः सहमत होंगे, किन्तु फिर भी सुरक्षा के लिये हमें कुछ समय देना अधिक अच्छा होगा। मुझे आशा है कि माननीय सदस्य कृपा करके सोचेंगे कि हममें से कुछ लोग कैसी कठिनाई में डाल दिये गये हैं और इस विषय को भविष्य में विचार किये जाने के लिये स्थगित कर देंगे। यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है उसके इस महत्व की दृष्टि से मेरा यह सुझाव मुनासिब है।

(नम्बर 273 से 278 तक के संशोधन पेश नहीं किये गये।)

***श्री शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रांत: जनरल): श्रीमान् सभापति महोदय, वाक्यांश 14 के उप-वाक्यांश (4) के प्रति मेरा संशोधन इस प्रकार है:

''यह कि वाक्यांश 14 के उप-वाक्यांश (4) में 'एक-तिहाई' शब्द की जगह 'आधा' शब्द रखा जाये।''

वाक्यांश 14 के उप-वाक्यांश (4) की वर्तमान स्थिति के अनुसार हर दूसरे साल एक तिहाई मेम्बर अवकाश ग्रहण करेंगे। हमने जो समय-विभाग रखा है, उसके अनुसार 'लोक-सभा' की जीवनावधि 4 वर्ष की होगी और नई 'लोक-सभा' तथा नवीन प्रान्तीय व्यवस्थापक-मण्डल सामान्य गति-विधि से हर चौथे वर्ष चुने जायेंगे। मैं जो चाहता हूं यह है कि 'राज-सभा' में भी हर दूसरे साल एक-तिहाई मेम्बर चुने जाने के बजाय आधे मेम्बर हर दूसरे वर्ष चुने जायें। इस प्रकार हर चौथे वर्ष हमें एक नवीन राज-सभा प्राप्त होगी। तर्क किया जा सकता है कि निम्न सभाएं उनकी जीवनावधि पूरी होने से भंग कर दी जाया करें, किन्तु मुझे निश्चय है कि सभाओं का इस प्रकार भंग किया जाना व्यवस्थापक-मण्डलों के जीवन का साधारण लक्षण न बनेगा और यदि एक या दो प्रान्तीय व्यवस्थापक-मण्डल अपनी पूरी अवधि से पहले भंग भी कर दिये गये, तो भी कम से कम वर्तमान शताब्दी के भीतर, चार-वर्षीय क्रम में अधिक अन्तर न पड़ेगा।

एक सदस्य: सूचना प्राप्त करने की बात; क्या वह संशोधन पेश करने जा रहे हैं?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** हां महोदय, मैं इसे पेश करता हूं।

सर एन. गोपालस्वामी आयंगर के संशोधन के अनुसार, इस सभा में राज्यों का काफी अधिक प्रतिनिधित्व रहेगा। और जैसा कि सर्व-ज्ञात है, राज्यों की निम्न सभाओं में नामजद मेम्बरों का बहुमत है। इस प्रकार इस सभा के मेम्बरों का अधिकांश शासकों के प्रतिनिधियों का होगा। इसलिये मैं जो चाहता हूं, यह है कि यह

सभा जिसमें प्रतिक्रियावादी मेम्बरों की काफी संख्या रहेगी, ऐसी सभा न बनायी जाये, जो बहुत लम्बे अरसे तक कायम रह सके। मैं चाहता हूं कि कम से कम उसका आधा भाग हर दूसरे साल बदलता रहे। ऐसा होने से शायद वह इतनी प्रतिक्रियावादी न रह पायेगी। दूसरी 'सभाओं' (चैम्बरों) का मैं पहले ही विरोध कर चुका हूं, किन्तु यदि हमें उन्हें रखना ही है, तो कम से कम हर दूसरे वर्ष हमें उनके आधे मेम्बर बदल देने चाहियें, ताकि चौथे वर्ष पूरी की पूरी 'राज-सभा' बदल जाये।

(नम्बर 280 से 299 तक के संशोधन पेश नहीं किये गये।)

(पूरक सूची नम्बर 1 के संशोधन नम्बर 13 से संशोधन नम्बर 16 तक पेश नहीं किये गये।)

(पूरक सूची नम्बर 2 के संशोधन नम्बर 10 व 11 पेश नहीं किये गये।)

(पूरक सूची नम्बर 3 के संशोधन नम्बर 4 से 6 तक पेश नहीं किये गये।)

(पूरक सूची नम्बर 4 का संशोधन नम्बर 2 पेश नहीं किया गया।)

***बेगम ऐज़ाज़ रसूल** (संयुक्त प्रान्तः मुस्लिम): श्रीमान्, मेरे नाम से जो संशोधन है, यह है कि:

''वाक्यांश 14 के उप-वाक्यांश (1) (बी) के अन्त में निम्नलिखित जोड़ दिया जाये:

'समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली द्वारा एकाकी हस्तांतरात्मक मत से'।''

श्रीमान् सर एन. गोपालस्वामी आयंगर द्वारा रखे गये संशोधन-प्रस्ताव के ख्याल से इस संशोधन को इस समय पेश करने का मेरा विचार नहीं है। मुझे आशा है कि अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करने के लिये 'यूनियन विधान-कमेटी' राज-सभा के लिये होने वाले निर्वाचन के सम्बन्ध में प्रश्न के इस बहुत ही महत्व के पहलू पर विचार करेगी। श्रीमान्, इस समय मैं यह संशोधन इसलिये पेश करना नहीं चाहती, क्योंकि सभा द्वारा उसके ठुकरा दिये जाने की दशा में उस पर नकारात्मक मत मिलने की बड़ी आशंका है, किन्तु, आवश्यक होने पर इस संशोधन को बाद में पेश कर सकने का अपना अधिकार मैं सुरक्षित रखती हूं।

***अध्यक्षः** आपके नाम दूसरा संशोधन भी है।

***बेगम एज़ाज़ रसूलः** मेरे नाम से दूसरा संशोधन इस प्रकार है :

''यह कि वाक्यांश 14 के उप-वाक्यांश (4) में 'दूसरे' शब्द की जगह पर 'तीसरा' शब्द रखा जाये।''

यह उप-वाक्यांश तब इस रूप में हो जायेगा:

''राज-सभा भंग न होने वाली एक स्थायी सभा होगी, किन्तु जहां तक लगभग सम्भव हो, उसके एक तिहाई मेम्बर परिशिष्ट में इस सम्बन्ध में दी गयी व्यवस्था के अनुसार हर तीसरे साल अवकाश ग्रहण करेंगे।''

श्रीमान्, यह संशोधन पेश करने में मेरा उद्देश्य यह है कि मुझे महसूस होता है कि 2 साल की अवधि एक व्यवस्थापक के लिये बहुत ही कम है। जैसे ही वह अपने कार्य से अवगत होगा, व्यवस्थापक का काम समझने लगेगा और उसमें तत्पर होने लगेगा, उसे अवकाश ग्रहण करना होगा। मेरी समझ में यह बहुत उचित नहीं है। उसकी अवधि अवश्य ही कुछ अधिक होनी चाहिये, जिसमें वह अपनी योग्यता का परिचय दे सके और जिस सभा के लिये वह निर्वाचित हो, उसके प्रति न्याय कर सके। श्रीमान्, यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया गया, तो इसका अर्थ यह होगा कि सभा के एक स्थायी संस्था होने तथा उसके एक-तिहाई मेम्बरों के हर तीसरे वर्ष अवकाश ग्रहण करने से यह 9 वर्षों का एक चक्कर हो जायेगा। जैसा कि बहुतेरे माननीय सदस्य जानते हैं, सन् 1935 के भारत-शासन-विधान के अधीन आजकल यही प्रणाली प्रचलित है। अतएव भारत के लोग इस प्रणाली से अनभिज्ञ नहीं हैं। श्रीमान्, अधिकांश पाश्चात्य देशों के विधानों में व्यवस्थापक-मंडल दो-दो सभाओं के हैं, और इनमें से 'ऊपरी सभा' के अधिकांश मेम्बर या तो आजीवन सदस्य होते हैं या फिर उस सभा की जीवनावधि ही 'निम्न सभा' की जीवनावधि की समकालीन होती है। केवल संयुक्त राष्ट्र (अमेरिका) के 'सेनेट' में ही ऐसा होता है कि एक तिहाई मेम्बर हर दूसरे वर्ष अवकाश ग्रहण करते हैं। किन्तु मैं महसूस करती हूं कि हमारे-भारत के लोगों के लिये उस प्रणाली की नकल करने की जरूरत नहीं है, जो संयुक्त राष्ट्र में प्रचलित है। इसका एक कारण यह है कि संयुक्त राष्ट्र के 'सेनेट' के मेम्बर लोकप्रिय मत से चुने जाते हैं, जब कि उस 'राज-सभा' के लिये जिसकी कि व्यवस्था 'यूनियन' के विधान

में की जा रही है, ये मेम्बर प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा न चुने जायेंगे बल्कि 'निम्न सभा' के मेम्बरों द्वारा चुने जायेंगे। अपने पक्ष के समर्थन में जो दूसरी जोरदार बात मैं बताना चाहती हूं यह है कि मैं नहीं समझती कि निम्न सभा के मेम्बरों को 'राज-सभा' के लिये अपनी मेम्बरी की अवधि में दो बार मेम्बर चुनने चाहियें। मैं समझती हूं कि इस अधिकार का प्रयोग केवल एक बार ही होना चाहिये। यदि यह व्यवस्था ऐसी ही रहने दी गयी जैसी कि वह इस समय है और यदि 'ऊपरी सभा' के मेम्बरों को हर दूसरे वर्ष अवकाश ग्रहण करना पड़ा, तो इसका मतलब यह होता है कि 'निम्न सभा' के मेम्बरों को अपनी मेम्बरी की अवधि में राज सभा के लिये दो बार मेम्बर चुनने का अधिकार रहेगा। इन्हीं कुछ शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन सभा के विचार के लिये रखती हूं। मैं समझती हूं कि यह बहुत ही उचित संशोधन है और आशा करती हूं कि स्वीकार किया जायेगा।

***अध्यक्षः** वाक्यांश तथा उसके संशोधनों पर अब बहस की जा सकती है।

***श्री जयनारायण व्यास** (जोधपुर): श्रीमान्, सभापति महोदय, सर एन. गोपालस्वामी आयंगर द्वारा हाल ही में रखे गये नये प्रस्तावों का समर्थन करने के लिये मैं उठा हूं, किन्तु ऐसा करते हुये मैं इस विषय पर कुछ शब्द कहना चाहता हूं। हमारे इन प्रस्तावों के समर्थन का अर्थ यह न समझा जाना चाहिये कि हम महसूस करते हैं कि देशी राज्यों के लोगों पर इन प्रस्तावों का अनुकूल असर पड़ेगा। हम इन प्रस्तावों का समर्थन विशुद्ध राजनीतिक कारणों से कर रहे हैं। जब ये प्रस्ताव स्वीकार कर लिये जायेंगे, तो निम्न सभा में चौदह और राज्य आ जायेंगे। इन 14 राज्यों में चार राज्य काठियावाड़ के होंगे, 7 पूर्वी राज्यों में से होंगे, एक राजपूताने का होगा, एक आसाम का होगा और एक शिमला के पहाड़ी राज्यों में से होगा। मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता है कि इन प्रस्तावों के कारण जूनागढ़, नवानगर, भावनगर तथा कच्छ के चार समुद्रतटवर्ती राज्य निम्न सभा में अपना स्थान प्राप्त करेंगे और मणिपुर का सीमावर्ती राज्य भी उसमें आ जायेगा। अतएव, इस दृष्टिकोण से निम्न सभा की सदस्य-संख्या बढ़ाना, जैसा कि किया गया है, बहुत अच्छी बात है। वाक्यांश 1 (बी) को सभा के सामने रखते हुये सर गोपालस्वामी आयंगर ने कहा है कि निम्न सभा के केवल निर्वाचित मेम्बर ही ऊपर वाली सभा के चुनाव में मत दे सकेंगे। मेरा मतलब राज्यों की 'लेजिस्लेटिव असेम्बलियों' के निर्वाचित मेम्बरों से है। ''निर्वाचित मेम्बरों'' शब्दों में कुछ गड़बड़ है। जब हम अपनी 'यूनियन' के निर्वाचित मेम्बरों के विषय में सोचते हैं, तो हम समझते हैं कि ये मेम्बर बालिग मताधिकार के आधार पर चुने जाते हैं। किन्तु देशी राज्यों

[श्री जयनारायण व्यास]

की स्थिति ऐसी नहीं है। मैं पंजाब के एक राज्य के सम्बन्ध में जानता हूं कि वहां एक शासक का बेटा 'असेम्बली' का निर्वाचित मेम्बर है और उनकी पत्नी भी निर्वाचित मेम्बरों में है, और श्रीमान्, दुर्भाग्यवश ये दोनों ही असेम्बली के मन्त्री बल्कि ''प्रजा-प्रिय मंत्री'' हैं। यही तरीका है, जिससे निर्वाचित मेम्बर तथा निर्वाचित प्रजा-प्रिय मंत्री राज्यों में असेम्बली की निम्न सभा के द्वारा आते हैं। एक राज्य ऐसा भी है, जिसमें निर्वाचन-क्षेत्र के चार मेम्बरों के पीछे एक निर्वाचित मेम्बर रहता है, सो भी एक निर्वाचित मेम्बर है। मैं अन्य एक राज्य के सम्बन्ध में जानता हूं, जिसकी निम्न सभा अर्थात् लेजिस्लेटिव असेम्बली में पचास निर्वाचित मेम्बरों में से दस जागीरदार हैं। इस प्रकार निर्वाचित मेम्बरों का अर्थ वस्तुतः निर्वाचित प्रतिनिधियों का नहीं हैं, क्योंकि वे लोक-प्रिय मताधिकार या बालिग मताधिकार के आधार पर नहीं चुने जाते। श्रीमान्, इन उदाहरणों को मैं आपकी और आपके जरिये इस सभा की निगाह में लाना चाहता हूं, ताकि जिस समय मस्विदा तैयार किया जा रहा हो, उस समय वे लोग जिनका कि उसके तैयार करने में हाथ हो, इस बात का ख्याल रखें कि वास्तव में निर्वाचित मेम्बरों को ही स्थान प्राप्त हो, ताकि धोखे के मताधिकार के आधार पर फर्जी व्यवस्थापक मंडलों में, जो कि कुछ राज्यों में विद्यमान हैं—चुने गये मेम्बरों को।

एक और बात मैं आपकी निगाह में लाना चाहता हूं। वह बात यह है कि राज्यों के लोकप्रिय प्रतिनिधियों को इस सभा की 'यूनियन-विधान-कमेटी' में कोई स्थान नहीं मिला है और जब नियम या वाक्यांश निर्मित होते हैं, तो विधान उप-समिति के सामने उनका मत प्रकट नहीं हो पाता। मुझे आशा है श्रीमान्, कि यूनियन-विधान-कमेटी में कोई जगह खाली होने पर लोकप्रिय तत्वों के दावे पर विचार किया जायेगा और यदि आवश्यक हो तो कमेटी की सदस्य-संख्या बढ़ा ली जायेगी, ताकि राज्यों के लोक-प्रिय मेम्बरों को उसमें स्थान मिल सके।

इन्हीं कुछ शब्दों के साथ श्रीमान्, मैं सभा से सर गोपालस्वामी आयंगर के प्रस्ताव पर अनुकूल विचार करने का अनुरोध करता हूं। और श्रीमान्, मुझे आशा है कि जिस समय मस्विदा तैयार करने का वास्तविक काम हाथ में लिया जायेगा, उस समय मेरी प्रार्थना पर भी विचार होगा।

श्री हीरालाल शास्त्री (जयपुर): अध्यक्ष महोदय, आज की इस बहस में हिस्सा लेने का मेरा कोई खास विचार नहीं था। लेकिन जब सर गोपालस्वामी आयंगर

ने यह फरमाया कि मैं सर्वसम्मति से एक संशोधन पेश करने जा रहा हूं, तब मेरी इच्छा हुई कि मुझे भी इस सम्बन्ध में कुछ कहना होगा। मैं श्री गोपालस्वामी से बड़े आदर के साथ पूछना चाहता हूं कि आपका यह संशोधन किस प्रकार सर्वसम्मत है? जहां तक मैं जानता हूं हम लोग रियासती जनता के प्रतिनिधि इस हाउस में मौजूद हैं वह आमतौर से इस राय के रहे कि जो मूल प्रस्ताव यूनियन कान्स्टीट्यूशन कमेटी की रिपोर्ट में है, उस पर कायम रहा जाये। दूसरे मुझे यह पूछना जरूरी मालूम होता है कि आखिर यह लोअर हाउस और अपर हाउस की स्ट्रेंथ को बढ़ाने की ज़रूरत क्यों मालूम हुई है। हमने आल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेंस में इस पर कई बार प्रस्ताव पेश किया है कि भारतीय संघ में बड़ी यूनिट्स शामिल होनी चाहिये और बीच के दरजे की जो छोटी-छोटी रियासतें हैं, उनको मिलाकर समूह बनाना चाहिये। हमने जो अपना स्टैण्डर्ड रखा है वह बहुत ऊंचा है। यानी पचास लाख की आबादी का तीन करोड़ की आमदनी का लें। लेकिन हमने तो संतोष माना था जब हमने यह देखा था कि दोनों हाउस के चुनाव के लिये सही दस लाख की मर्यादा की कम से कम आबादी रखी गई है। इस पर संशोधन लाये गये और कोशिशें की गई हैं। ताकि यह आबादी की मर्यादा दस लाख से घटाकर ढाई लाख कर दी जाये। आखिर वह तो नहीं हुआ, लेकिन मुझे साफ दिखाई दे रहा है कि यह जो तजवीज की गयी है दस लाख को साढ़े सात लाख करने की और साढ़े पांच लाख को पांच लाख करने की। आखिर इसमें भी यह नीति है कि कुछ रियासतें जिनकी आबादी पांच लाख से ज्यादा है उनको अलग प्रतिनिधित्व मिल जाये न सिर्फ अपर हाउस में बल्कि लोअर हाउस में भी। यह चीज मुझे पसन्द नहीं है। सर्वसम्मति से आखिर तक मैं इस वास्ते बराबर असहमत रहा हूं। यह ठीक है कि जब स्वयं सर गोपालस्वामी आयंगर जो उसके मूल रचियता रहे होंगे, वह जब एक दूसरा संशोधन ला रहे हैं, तो मैं ठीक नहीं समझता कि आपके संशोधन का विरोध करूं। लेकिन इस सम्बन्ध में मैं अपने मनोभाव प्रकट किये बिना नहीं रह सकता। और वह मनोभाव यह है कि जब हमारा देश भारतवर्ष एक हुआ जा रहा है, विभाजन हो गया उसके बावजूद जब एक हुआ जा रहा है और प्रान्तों और रियासतों का जो भेद है वह एक प्रकार से मिटा जा रहा है, इस वक्त मैं मुनासिब नहीं समझता कि छोटे-छोटे टुकड़े रियासतों के वह अलग-अलग इकाई के रूप में रहें।

मैं मुनासिब नहीं समझता हूं कि छोटे-छोटे टुकड़े रियासतों के अलग इकाई के रूप में रहें। जब मैं यह कह रहा हूं तो मैं यह भूल नहीं रहा हूं और इस

[श्री हीरालाल शास्त्री]

बात को समझ रहा हूं कि अगर इकाई कायम की जायेगी तो वह सिर्फ चुनाव के सिलसिले में की जायेगी। तथा मैं महसूस करता हूं कि जो इस सम्बन्ध में समूह बनाने की बात है उसके खिलाफ पड़ेगी और छोटी रियासतों को अलग इकाई बनने का मौका मिल जायेगा। अगर हमको समूह के तौर पर ही छोटे-छोटे रियासतों के समूह बनाकर संघ में शामिल करना है तो उनको इस हाउस के चुनाव में अलग इकाई बनने का मौका कम से कम मिलना चाहिये। जो हमारा प्रस्ताव था उसके अनुसार सिर्फ 15 रियासतें आती थीं। लेकिन प्रतिनिधि मानने की हैसियत से और जैसा यह संशोधन पेश किया गया है और जैसा रियासतों ने भी किया है कि इस संशोधन के अनुसार जो 15 रियासतें और शामिल हो जायेंगी तो यह छोटी-छोटी इकाई की संख्या इस तरह बढ़ जायेगी। इसके अलावा एक और धारा बढ़ी है। सर गोपालस्वामी के संशोधन में और बहुत-सी डिटेल्स की बातें हैं, इकाई बनाने, निर्वाचन-क्षेत्र कायम करने के बारे में हैं। यह यूनियन कान्स्टीट्यूशन कमेटी के पास जायेगी और वहां पर निर्णय होगा। इस सम्बन्ध में मैं बड़े अफसोस के साथ इस बात का इज़हार करना चाहता हूं कि यूनियन कान्स्टीट्यूशन कमेटी में रियासतों की जनता का कोई प्रतिनिधि अब तक नहीं लिया गया है। लेकिन इसकी कोई बहस नहीं। लेकिन एक खास बात हो रही है और वह यूनियन कान्स्टीट्यूशन कमेटी के पास जायेगी और जैसी महाराज नगेन्द्र जी ने इस वक्त मांग की है छोटी रियासतों का कोई न कोई प्रतिनिधि इस कमेटी में लिया जाना चाहिये। मुझे मालूम नहीं कि इसमें कितने प्रतिनिधि होंगे मगर मुझे इस बात की शिकायत है और मैं इस बात को ज़ाहिर करूंगा कि इस कमेटी में जनता का भी प्रतिनिधि जरूर होना चाहिये। अब बड़े-बड़े अहम मामले इस कमेटी के सामने आयेंगे और निर्णय होंगे तो रियासतों की जनता का प्रतिनिधि इस कमेटी में होना चाहिये ताकि वह अपनी राय दे सके। मैं खास तौर से इस हाउस को सावधान कर देना चाहता हूं कि छोटी-छोटी रियासतों को अलग इकाई के रूप में प्रतिनिधि मिलने का अवसर न आना चाहिये। जितना काम मेल से होगा, उतना ही अच्छा है। इस बात के लिये मेरे पास बहुत वजूहात हैं, मगर मैं इस बहस में पड़ना ठीक नहीं समझता हूं। छोटी-छोटी रियासतों में आज भी जितना अत्याचार और दमन दिखाई देता है उसको सुनकर बहुत आश्चर्य और दुख होता है। रियासती जनता उनकी मार से बहुत दुखी है।

बहुत सी रियासतें जो हमारे विधान-परिषद् में शामिल हो गई हैं, चाहे वह इकाई के समूह में बनकर शामिल हुई हैं या अलग आई हैं, वह समझने लगीं

हैं कि उन्होंने हमारे नेताओं और कांग्रेस पर अहसान किया। मैं इसका विरोध करना अच्छा नहीं समझता हूं। लेकिन जिस प्रकार यह धीरे-धीरे छोटी और बड़ी रियासतें भारतीय संघ में शामिल हुई हैं, वह यह समझने लगीं हैं कि उनको इस बात का पट्टा मिल गया है कि वह अपनी जनता के सब तरह का अख्तियार रखते हैं। इस तरह से उन्होंने रियासती जनता पर न केवल अख्तियार ही बल्कि अत्याचार करना भी शुरू कर दिया है। इस मौके पर मैं यह जाहिर किये बगैर नहीं रह सकता कि जितनी रियासतों की रोज़बरोज़ बड़ी-बड़ी खबरें अखबारों के फ्रण्ट पेज में तस्वीरों के साथ छपती हैं उन रियासतों के भीतर का हाल देखा जाये, तो वहां बहुत ही अत्याचार जनता के ऊपर मिलेगा। इस बात को कहने का यह ठीक मौका नहीं था, मगर मेरे दिल में दर्द है जिसे किसी समय प्रकट करना ही था।

अभी जैसा व्यास जी ने बतलाया कि वहां चुनाव में किस प्रकार अड़ंगा-बाज़ी हो रही है और होती रहती है। इसलिये मैं गोपालस्वामी आयंगर का ध्यान खासतौर से इस ओर दिलाता हूं कि वह मेहरबानी करें और इस बात का ख्याल करें कि जब निर्वाचन-क्षेत्र कायम करेंगे और अलग इकाई कायम करेंगे, तो फिर छोटी-छोटी रियासतें अनगिनती फेहरिस्त में न जायें और रियासती जनता के प्रतिनिधि की भी किसी न किसी रूप में राय हासिल की जाये।

मैं इस प्रस्ताव के संशोधन का विरोध करने नहीं आया हूं लेकिन यह ज़ाहिर करने आया हूं कि कम से कम रियासती जनता की राय का ख्याल किया जाये। मैं सभापति जी से भी अपील करूंगा कि रियासतों की जनता का प्रतिनिधि इस मामले में शामिल किया जाये।

***श्री सत्यनारायण सिन्हा:** अब प्रश्न रखा जाये।

***अध्यक्ष:** प्रश्न है कि:

''अब प्रश्न रखा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों को रखूंगा। पहले मैं सर एन. गोपालस्वामी आयंगर के संशोधन रखूंगा। प्रश्न है:

''1. यह कि वाक्यांश 14 के उप-वाक्यांश (1) की (ए), (बी) तथा (सी) मदों के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'(ए) राजसभा का संख्या-बल इस रूप में निर्धारित किया जायेगा कि वह 'लोक-सभा' के संख्या-बल के आधे से अधिक न हो। कार्यात्मक

[अध्यक्ष]

निर्वाचन क्षेत्रों द्वारा अथवा 1937 के आयरिश विधान की 18 (7) धारा की व्यवस्था के अनुरूप निर्मित मण्डलों द्वारा 'राजसभा' के 25 से अधिक मेम्बर न निर्वाचित होंगे। 'राज-सभा' के मेम्बरों का शेषांश यूनिटों के प्रतिनिधि निर्वाचन-क्षेत्रों द्वारा सविवरण निश्चित किये जाने वाले पैमाने के हिसाब से निर्वाचित होंगे।

शर्त यह है कि देशी राज्यों का कुल प्रतिनिधित्व इस शेषांश के 40 प्रतिशत से अधिक न हो।

स्पष्टीकरण– 'यूनिट' से अर्थ है एक प्रान्त या देशी राज्य का, जो स्वयं अपने व्यक्तिगत अधिकार से संघीय पार्लियामेंट के लिये मेम्बर चुनकर भेजता है। उन देशी राज्यों के सम्बन्ध में राज-सभा में प्रतिनिधि भेजने के लिये जिनकी एक साथ गुटबन्दी हुई है, 'यूनिट' का अर्थ इस प्रकार निर्मित गुट से है।

(बी) 'राज-सभा' के लिये हर 'यूनिट' के प्रतिनिधि उस यूनिट के व्यवस्थापक-मण्डल के निर्वाचित मेम्बरों द्वारा चुने जायेंगे और जहां यह व्यवस्थापक-मण्डल दो सभाओं का होगा, वहां उस व्यवस्थापक-मण्डल की निम्न-सभा के निर्वाचित मेम्बरों द्वारा चुने जायंगे।

(सी) 'लोक-सभा' का संख्या-बल इस रूप में निश्चित किया जायेगा कि वह 500 से अधिक न हो। संघ-शासन के यूनिट (इकाइयां) चाहे वे प्रांत हों या देशी राज्य हों या देशी राज्यों के गुट हों, निर्वाचन-क्षेत्रों में विभक्त किये जायेंगे और हर निर्वाचन-क्षेत्र के प्रतिनिधियों की संख्या इस भांति निर्धारित की जायेंगी कि यह पक्का रहे कि आबादी के प्रत्येक 7,50,000 के लिये एक से कम और प्रत्येक 5,00,000 के लिये एक से अधिक प्रतिनिधि न रहेगा।

शर्त है कि देशी राज्यों की कुल आबादी से उनके प्रतिनिधियों की कुल संख्या का अनुपात प्रांतों की कुल आबादी से उनके प्रतिनिधियों की कुल संख्या के अनुपात से अधिक न होगा।'

2. यह कि वाक्यांश 14 के उपवाक्यांश (1) में निम्नलिखित नयी मद (ई) शामिल कर ली जाये:

'राज-सभा तथा लोक-सभा के वास्तविक संख्या-बल का निर्धारण, संघ-शासन के यूनिटों के बीच इस प्रकार निर्धारित संख्या-बल का विभाजन, राज-सभा के लिये कार्यात्मक मण्डलों अथवा निर्वाचन-क्षेत्रों की संख्या, प्रकृति तथा गठन का निश्चय, वह तरीका जिसके अनुसार दोनों सभाओं

के निमित्त निर्वाचन के लिये छोटे राज्यों की गुटबन्दी से 'यूनिट' कायम किये जायें और अन्य सम्बंधित बातें 'यूनियन विधान कमेटी' के विचारार्थ वापस भेजी जायेंगी तथा वह कमेटी उनकी जांच करेगी। इस प्रकार की जांच के बाद 'यूनियन विधान कमेटी' इन विषयों की व्यवस्था के सम्बन्ध की अपनी सिफारिशें विधान-परिषद् के सभापति के पास दाखिल करेगी, जिन्हें यूनियन विधान के मस्विदे में शामिल कर लिया जाना चाहिये।'

संशोधन स्वीकार कर लिये गये।

***अध्यक्ष:** छ: अन्य संशोधन भी हैं, जो पेश किये गये थे। मैं मि. नजीरुद्दीन अहमद का संशोधन रखूंगा। प्रश्न यह है कि:

''वाक्यांश 14 का उप वाक्यांश (2) निकाल दिया जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** दूसरा संशोधन श्री शिब्बनलाल सक्सेना का है, जिसे मैं अब रखूंगा। प्रश्न यह है कि:

''वाक्यांश 14 के उप-वाक्यांश (4) में ''एक-तिहाई'' शब्द के स्थान में ''आधा'' शब्द रखा जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं बेगम ऐज़ाज़ रसूल द्वारा प्रस्तावित संशोधन सभा के सामने रखूंगा। प्रश्न यह है कि:

''वाक्यांश 14 के उप-वाक्यांश (4) में ''दूसरे'' शब्द की जगह ''तीसरा'' शब्द रखा जाये।''

प्रस्ताव अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं सर एन. गोपालस्वामी आयंगर के संशोधन के अनुरूप जो कि स्वयं स्वीकार किया जा चुका है, संशोधित मूल वाक्यांश सभा के सामने रखूंगा। प्रश्न यह है कि:

''वाक्यांश 14 संशोधित रूप में स्वीकार किया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***श्री एम.एस. अणे:** इस वाक्यांश के नीचे एक नोट दिया हुआ है और उस नोट में विभिन्न प्रान्तों तथा राज्यों के नाम दिये हैं। मैंने देखा है कि इन नामों के बीच 'सेंट्रल प्राविन्सेज़' (मध्य प्रान्त) का नाम सी. पी. करके दिया हुआ है। जिस 'एक्ट' के अनुसार यह प्रान्त बना है, उसमें इसका नाम 'सी. पी. एण्ड बरार' (मध्य प्रान्त तथा बरार) है। यही नाम कुछ अन्य वाक्यांशो में भी आया है, जिन्हें हम स्वीकार भी कर चुके हैं। मैं समझता हूं कि क्लर्क की गलती से ऐसा हुआ होगा। किन्तु तो भी इस बात को मैं आपकी तथा सभा की निगाह में ज़रूर लाना चाहता हूं। अन्तिम मस्विदा तैयार किये जाने के समय भी यदि यह नोट वहां मौजूद हो, तो प्रान्त का सही नाम 'दी सेंट्रल प्राविन्सेज़ एण्ड बरार' (मध्य प्रान्त तथा बरार) दिया जाना चाहिये।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि यह भूल है, क्योंकि परिशिष्ट में वह सही दिया गया है।

भाग 10

***अध्यक्ष:** अब हम भाग 10 को लेंगे।

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर:** श्रीमान्, मैं यह अनुरोध कर सकने की अनुमति चाहता हूं कि इस भाग का पेश किया जाना स्थगित रखा जाये, क्योंकि कई संशोधनों द्वारा यह बड़े महत्व का प्रश्न उठाया गया है कि प्रान्तीय व्यवस्थापक-मण्डलों को प्रान्त के विधान में संशोधन कर सकने के लिये कुछ मूल अधिकार प्रदान करने के अभिप्राय से क्या व्यवस्था की जाये। इसके लिये कुछ विचार करने की आवश्यकता है। अतएव यदि आप इजाज़त दें तो इस विषय पर हम दूसरे अधिवेशन में विचार कर लेंगे।

***अध्यक्ष:** भाग 10 पर विचार करना स्थगित रखा जायेगा।

भाग 11

***अध्यक्ष:** अब हम भाग 11 को लेंगे।

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर:** भाग 10 के पहले वाक्यांश का शब्द-चयन इस प्रकार है:

> ''सारी सम्पत्ति, पावना, अधिकार तथा देना के सम्बन्ध में संघ-सरकार सन् 1935 के भारत-शासन-विधान द्वारा संस्थापित भारत सरकार की उत्तराधिकारिणी होगी।''

मैं इस वाक्यांश को कुछ मौखिक परिवर्द्धन के साथ, जिससे उसकी व्यवस्था हाल की घटनाओं की दृष्टि से पूर्ण जंचेगी, पेश करने की अनुमति चाहता हूं। इस वाक्यांश का मस्विदा तैयार होने के बाद से पार्लियामेंट द्वारा 'भारतीय-स्वाधीनता कानून' पास किया जा चुका है। इस कानून द्वारा प्रदत्त अधिकारों के अनुसार गवर्नर-जनरल द्वारा भारत-शासन-विधान में व्यापक रूप से अनुकूल परिवर्तन करने के लिये आदेश दिये जा रहे हैं। अतः जिस समय हम इस नवीन संशोधन को लागू कर रहे होंगे, वह अनुकूल रूप में परिवर्तित 'सन् 1935 का भारत-शासन-विधान' ही होगा। इसलिये यदि आप मुझे इसकी अनुमति दें, तो मैं यह पेश करूंगा:

''वाक्यांश 1 में 'सन् 1935 के भारत-शासन-विधान' शब्दों के बाद 'भारतीय स्वाधीनता कानून की व्यवस्था के अधीन अनुकूल रूप में परिवर्तित' शब्द जोड़ दिये जायें।''

***अध्यक्ष:** वाक्यांश 1 कुछ परिवर्तन के साथ पेश किया गया है। हमारे पास कई संशोधन हैं, जिनकी सूचना मुझे प्राप्त हुई है।

***श्री के. संतानम्** (मद्रास: जनरल): श्रीमान्, मैं जानना चाहता हूं कि क्या परिवर्द्धन के लिये वे शब्द जोड़ लिये गये।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** मेरे संशोधन के बाद वाक्यांश का स्वरूप नीचे लिखे अनुसार हो जायेगा:

''1–सारी सम्पत्ति, पावना, अधिकार तथा देना के सम्बन्ध में संघ-सरकार 'भारतीय स्वाधीनता कानून' के अधीन अनुकूल रूप में परिवर्तित 'सन् 1935 के भारत-शासन-विधान' द्वारा संस्थापित भारत सरकार की उत्तराधिकारिणी होगी।''

***श्री के. सन्तानम्:** मैं अपना संशोधन (नम्बर 401) नहीं पेश करता।

***अध्यक्ष:** संशोधित रूप में जो संशोधन पेश किया गया है, यह है:

''1–सारी सम्पत्ति, पावना, अधिकार तथा देना के सम्बन्ध में संघ-सरकार 'भारतीय स्वाधीनता कानून' के अधीन अनुकूल रूप में परिवर्तित 'सन् 1935 के भारत-शासन-विधान' द्वारा संस्थापित भारत सरकार की उत्तराधिकारिणी होगी।''

***श्री के. सन्तानम्:** कठिनाई यह है कि 'भारतीय स्वाधीनता कानून' को 'सन् 1935 के भारत-शासन-विधान' से पहले आना चाहिये। इसलिये 'सन् 1935 के भारत-शासन-विधान' को पहले रखना सही न होगा। कम को हमें उलटना ही होगा।

***अध्यक्ष:** सन् 1935 के कानून में ही अनुकूल परिवर्तन किये गये हैं।

***श्री के. सन्तानम्:** चालू कानून 'भारतीय स्वाधीनता कानून' है और अनुकूल परिवर्तन इसी 'भारतीय स्वाधीनता कानून' के अधीन हैं।

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर:** क्या मैं यह बात साफ कर सकता हूं। कुछ भी हो श्रीमान् 'भारतीय स्वाधीनता कानून' अधिकांशत: एक सामर्थ्य प्रदायक कानून है। 15 अगस्त सन् 1947 से आगे जिस विधान के अधीन हम कार्य करेंगे, फिर भी 'सन् 1935 का भारत-शासन-विधान' ही होगा, जो भारतीय स्वाधीनता कानून द्वारा गवर्नर-जनरल को दिये गये अधिकारों के अनुसार जारी किये जाने वाले आदेशों के अनुकूल परिवर्तित किया हुआ होगा।

***श्री के. सन्तानम्:** मैं नहीं समझता कि कानूनी दृष्टि से यह ठीक होगा। कई बातों के सम्बन्ध में हम 'भारतीय स्वाधीनता कानून' के अधीन कार्य कर रहे होंगे या 'सन् 1935 के भारत-शासन-विधान' के अधीन कार्य करेंगे?

***सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** मेरा ख्याल है कि श्री सन्तानम् ठीक कहते हैं। असली विधान तो स्वाधीन भारतीय उपनिवेश का विधान होगा। उपनिवेश-कानून (डोमिनियन एक्ट) के अनुकूल बनाने के लिये हम सन् 1935 के कानून (एक्ट) में आवश्यक परिवर्तन कर रहे हैं। भावी सरकार उपनिवेश-सरकार की उत्तराधिकारिणी होगी।

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर:** श्रीमान्, मैं कानूनी मत के आगे सिर झुकाता हूं, यद्यपि मुझे इत्मीनान नहीं हो रहा है। मुझे इसके सही होने में सन्देह है।

***श्री के. सन्तानम्:** उपयुक्त व्यवस्था कर ली जाये।

***अध्यक्ष:** यद्यपि अर्थों में कोई फर्क नहीं है, पर इस विषय में मतभेद अवश्य है। अच्छा होता यदि आप इस मामले को सर एन. गोपालस्वामी आयंगर पर छोड़ देते, ताकि वे इसे सही रूप में रख लेते।

चूंकि सर्वश्री निजलिंगप्पा, कृष्णमूर्तिराव तथा अनन्तशयनम् आयंगर अपने संशोधन नहीं रख रहे हैं, अतएव में भाग 11 का वाक्यांश 1 मत लेने के लिये रखूंगा।

प्रश्न यह है कि:

''भाग 11 का वाक्यांश 1 स्वीकार किया जाये।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

वाक्यांश 2

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव रखता हूं:

''2. (1) इस 'विधान' के अधीन संघ-शासन के प्रदेशों में विधान आरम्भ होने के तत्काल पहले चालू कानून वहां चालू रहेंगे, जब तक कि एक योग्य व्यवस्थापक-मंडल या अन्य योग्य सत्ता द्वारा वे परिवर्तित या रद्द या संशोधित न किये जायें।

(2) अध्यक्ष महोदय आदेश द्वारा व्यवस्था दे सकेंगे कि एक निश्चित तारीख से प्रान्तों में चालू किसी भी कानून का असर योग्य सत्ता द्वारा रद्द या संशोधित किये जाने तक के लिये उन अनुकूल परिवर्तनों व संशोधनों के अधीन होगा, जो उक्त कानून की व्यवस्था को इस विधान की अनुकूलता में लाने के लिये उन्हें आवश्यक या अच्छे मालूम हों।''

मौजूदा कानून (एक्ट) को चालू रखने के लिये ये जरूरी हैं।

(श्री जयनारायण व्यास ने अपना संशोधन नम्बर 404 पेश नहीं किया।)

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** सभापति महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखना चाहता हूं कि:

''वाक्यांश 2 के उप-वाक्यांश (2) में 'योग्य सत्ता द्वारा' शब्दों की जगह 'एक योग्य सत्ता द्वारा' शब्द रखे जायें।''

श्रीमान्, यह केवल मस्विदे का संशोधन है।

***श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव** (मैसूर): सभापति महोदय, यह केवल एक सामर्थ्यप्रदायक व्यवस्था है, जो वैसी ही है जैसी कि प्रान्तों के लिये की गयी है। इसका ताल्लुक उन्हीं राज्यों से है, जो यूनियन में शामिल हों। मेरा संशोधन इस प्रकार है:

''वाक्यांश 2 के उप-वाक्यांश (2) में 'प्रान्तों' शब्द के बाद निम्नलिखित जोड़ दिया जाये:

'और वे राज्य जो 1947 के भारतीय स्वाधीनता कानून की धारा 2 की व्यवस्था के अनुसार भारतीय उपनिवेश के अंग हैं'।''

मुझे आशा है कि वाक्यांश के प्रस्तावक महाशय यह संशोधन स्वीकार करेंगे।

***अध्यक्ष:** चूंकि इस वाक्यांश पर अन्य कोई संशोधन नहीं है और कोई सदस्य कुछ कहना नहीं चाहता, इसलिये अब सर एन. गोपालस्वामी आयंगर बहस के उत्तर में बोल सकते हैं।

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर:** सभापति महोदय, श्री नजीरुद्दीन अहमद का सुझाव मस्विदे के संशोधन के सम्बन्ध में है। किन्तु मुझे निश्चय नहीं है कि वह मस्विदा सम्बन्धी संशोधन है। ''एक योग्य सत्ता द्वारा'' की जगह मैं ''योग्य सत्ता द्वारा'' ही रखना पसन्द करूंगा।

श्री राव के संशोधन के विषय में मुझे यह कहना है कि यदि राज्यों के प्रतिनिधि उससे सहमत हों, तो मैं उसे स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। किन्तु मुझे भय है कि इस प्रश्न से सहमत होने के पहले हमें बड़ी सावधानी से उसकी जांच करनी होगी। मैं यह अधिक अच्छा समझूंगा कि यह वाक्यांश छोड़ रखा जाये और बाद में वह जांच लिया जाये।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा।

श्री नजीरुद्दीन अहमद का संशोधन कि वाक्यांश 2 के उप-वाक्यांश (2) में ''योग्य सत्ता द्वारा'' शब्दों की जगह ''एक योग्य सत्ता द्वारा'' शब्द रखे जायें।

संशोधन का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया।

***श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव:** श्रीमान्, मैं अपना संशोधन वापस लेता हूं।

***अध्यक्षः** श्री कृष्णमूर्तिराव अपना संशोधन वापस लेते हैं। मैं समझता हूं कि उन्हें सभा इसे वापस लेने की इजाजत दे रही है।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।

***अध्यक्षः** अब मैं वाक्यांश पर मत लूंगा।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

वाक्यांश 3

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगरः** श्रीमान्, वाक्यांश 3 इस प्रकार हैः

''जब तक कि इस विधान के अनुसार 'सर्वोच्च न्यायालय' (सुप्रीम कोर्ट) की स्थापना नहीं हो जाती, 'संघ-न्यायालय' (फेडरल कोर्ट) ही 'सर्वोच्च-न्यायालय' माना जायेगा और वह 'सर्वोच्च न्यायालय' का सारा कार्य सम्पन्न करेगा।

साथ में यह शर्त भी है कि विधान के आरम्भ होने के समय संघ-न्यायालय तथा 'प्रिवी कौंसिल की ज्युंडिशियल कमेटी' के सामने जो मामले विचाराधीन होंगे, वे उसी प्रकार निपटाये जायेंगे, मानो यह विधान चालू न हुआ हो।''

अर्थात्, इस विधान के आरम्भ के समय 'ज्युडिशियल कमेटी' के सामने जो मामले विचाराधीन होंगे, उनका फैसला वही कमेटी करती रहेगी। श्रीमान्, मैं देखता हूं कि इस वाक्यांश में सुधार करने के लिये भी कुछ संशोधन रखे गये हैं। सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने जिस संशोधन की सूचना दी है, मैं उसे स्वीकार करने को तैयार हूं।

(सर्वश्री के. सन्तानम्, विश्वनाथदास तथा ठाकुरदास भार्गव ने अपने संशोधन नम्बर 407, 408 तथा 409 पेश नहीं किये।)

***श्री जसपतराय कपूरः** सर अल्लादी के संशोधन के ख्याल से मैं अपना संशोधन नम्बर 410 नहीं पेश कर रहा हूं।

(श्री सिधवा ने अपना संशोधन नम्बर 411 पेश नहीं किया।)

***सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** मेरा संशोधन इन शब्दो में हैः

''वाक्यांश 3 की शर्त-व्यवस्था के स्थान में निम्नलिखित रखा जायेः

[सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

'इस विधान के लागू होने पर तथा उसके बाद के किसी भी न्यायालय से की गयी अपीलों तथा दरख्वास्तों को सुनने व फैसला करने का सम्राट की प्रिवी कौंसिल की ज्युडिशियल कमेटी का अधिकार-क्षेत्र, जिसमें सम्राट के विशेषाधिकार के प्रयोगान्तर्गत फौजदारी मामलों के सम्बन्ध का अधिकार-क्षेत्र भी सम्मिलित है, समाप्त हो जायेगा और प्रिवी कौंसिल के विचाराधीन सारी अपीलें तथा अन्य कार्रवाइयां 'सुप्रीम कोर्ट' को हस्तांतरित समझी जायेंगी तथा उसी के द्वारा फैसल होंगी। इस व्यवस्था को क्रियान्वित करने तथा इसके अमल के लिये संघ-शासन की पार्लियामेंट और भी व्यवस्था कर सकती है'।''

श्रीमान्, सभा से इस संशोधन को स्वीकार करने का अनुरोध करते हुये मैं कुछ बताना चाहता हूं। ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल तक में न्याय-सम्बन्धी स्वायत्त शासन उस नवीन पद का अनिवार्य अनुगामी समझा जाता है, जो पद कि उपनिवेशों ने प्राप्त किया है। आस्ट्रेलिया में उस देश की हाईकोर्ट की अनुमति बिना अपील करने का कोई अधिकार नहीं है। कनाडा में हाल की कानून-व्यवस्था के अनुसार दीवानी व फौजदारी दोनों ही के मामलों में वहां की 'सुप्रीम कोर्ट' के फैसले पर अपील कर सकने का अधिकार समाप्त कर दिया गया है। दक्षिण अफ्रीका में भी वहां के विधान के अनुसार 'ज्युडिशियल कमेटी' में अपील करने का अधिकार नहीं है। यदि ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल के उपनिवेशों तक में स्थिति यह है, तो समझ में नहीं आता कि भारत के एक स्वाधीन प्रजातन्त्र (रिपब्लिक) हो जाने और जो विधान हम तैयार कर रहे हैं उसके लागू हो जाने पर 'ज्यूडिशियल कमेटी' का उक्त अधिकार-क्षेत्र कायम रखना कहां तक उचित है। विचाराधीन अपीलों के सम्बन्ध में भी 'कमेटी' का अधिकार-क्षेत्र ऐसी दशा में अपने-आप समाप्त हो जाना आवश्यक है। समझ में नहीं आता कि वस्तुतः जो एक विदेशी न्यायालय है, वह भारतीय न्यायालयों के निर्णय उलट देने या उनमें परिवर्तन करने की स्थिति में कैसे रखा जाये। जो 'सुप्रीम कोर्ट' स्थापित होने को है, वही सारे भारत के लिये अपील करने का अन्तिम न्यायालय है; अतः उचित ही है कि जो भी मामले विचाराधीन हों, वे इस 'सुप्रीम कोर्ट' को हस्तांतरित कर दिये जायें। कुछ हल्कों में यह प्रश्न भी उठाया गया है कि क्या हम 'ज्युडिशियल कमेटी' को किसी मामले के कागज-पत्र हस्तांतरित करने का आदेश दे सकते हैं। हम केवल यही कानून बना रहे हैं कि विचाराधीन मामले हस्तांतरित समझे जायेंगे और यह कि इसके बाद इन सारे मामलों की सुनवाई का अधिकार-क्षेत्र सुप्रीम कोर्ट का होगा। मैं नहीं समझता कि 'ज्युडिशियल कमेटी' हमारी कानून-व्यवस्था के सहायतार्थ कार्य न करेगी। वस्तुतः 'ज्युडिशियल कमेटी' के पास बहुत ही कम असली कागज-पत्र

हैं। यदि कार्य-विधि या अन्य बातों के सम्बन्ध में कोई कठिनाई पड़ी तो संघीय कानून बना लिया जायेगा। इस संशोधन के अन्तिम भाग का यही लक्ष्य है। अतएव मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि वह इस संशोधन को स्वीकार करे।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** मैं पूरक सूची 4 का अपना संशोधन नम्बर 11 नहीं पेश कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** मेरा ख्याल है कि अब केवल एक संशोधन और है।

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगरः** मैं सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर का संशोधन स्वीकार करता हूं।

***अध्यक्षः** संशोधन वाक्यांश के प्रस्तावक द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। अब मैं इसे मत लेने के लिये रखूंगा।

सभा द्वारा संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** अब मैं वाक्यांश को सर अल्लादी द्वारा संशोधित रूप में मत लेने के लिये रखूंगा।

वाक्यांश 3, संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया गया।

अब केवल 2 मिनट समय रह गया है, और ...।

***माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगरः** केवल दो या तीन वाक्यांश और बचे हैं।

***अध्यक्षः** यदि सभा की इच्छा है कि इन वाक्यांशो को हम पूरा कर लें, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु $2^{1}/_{2}$ बजे दिन में 'एडवाइज़री कमेटी' की बैठक है और मेम्बरों की इच्छा हो सकती है कि . . . ।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** इस ख्याल से कि 'परिषद्' (असेम्बली) आज केवल 1 बजे तक ही बैठेगी। हम पहले ही आज के लिये अपनी सीटें (रेल में) रिजर्व करा चुके हैं।

***अध्यक्षः** क्या सभा की यह इच्छा है कि शेष वाक्यांशों पर दूसरे अधिवेशन में विचार किया जाये?

***अनेक माननीय सदस्यः** हां।

***अध्यक्षः** तब शेष वाक्यांशों का विचार स्थगित रखा जाता है।

अध्यक्ष द्वारा घोषणा

अध्यक्षः किन्तु विसर्जित होने से पहले मुझे कुछ घोषणा करनी है। राजकुमारी अमृतकौर का प्रस्ताव था कि राष्ट्रीय झंडे के लिये खादी का व्यवहार किया जाये। इस प्रस्ताव की सूचना ऐसे समय मिली, जब हम 'स्टीयरिंग कमेटी' की बैठक नहीं बुला सकते थे। इसलिये इस प्रस्ताव को हम सभा के सामने नहीं रख सके। किन्तु मैं सभा को सूचित कर देना चाहता हूं कि जहां तक इस 'विधान परिषद्' का सम्बन्ध है, कोई ऐसा झण्डा इस्तेमाल न किया जायेगा, जो खादी के सिवा और किसी चीज का बना हो। सरकार की भी यही नीति है, जिसकी सूचना प्रान्तीय सरकारों को भी दी जा चुकी है कि सारे राष्ट्रीय झंडे केवल खादी के बनाये जाने चाहियें, अर्थात् हाथ के कते व बुने कपड़े के, चाहे वह कपड़ा सूत का हो अथवा ऊन या रेशम या अन्य किसी चीज का हो।

कल सभा ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया था, जिसके द्वारा मुझसे चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों के विधान का मस्विदा तैयार कराने के लिये एक कमेटी नियुक्त करने का अनुरोध किया गया था। मुझे यह घोषणा करते हुये हर्ष है कि इस कार्य के लिये मैंने इन महानुभावों की कमेटी नियुक्त की है:

माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर।

डाक्टर बी. पट्टाभि सीतारमैया।

श्री के. सन्तानम्।

श्री देशबन्धु गुप्त।

श्री मुकुट बिहारी लाल भार्गव।

श्री सी. एम. पून्या।

मि. हुसैन इमाम।

एक अन्य महत्वपूर्ण विषय भी है, जिसकी चर्चा बहस के शुरू में की गयी थी और उसके सम्बन्ध में भी, अर्थात् 15 अगस्त के समारोह के सम्बन्ध में मैं कुछ घोषणा करना चाहता हूं। हमने जो कार्यक्रम सोच रखा है, यह है कि:

14 और 15 के बीच की रात ठीक आधी रात में हम इस सभा का एक अधिवेशन करें और उस समय ठीक बारह बजते हम उस कार्रवाई को जिससे

कि हम पास हो चुके उस नवीन एक्ट (कानून) के अनुसार सत्ता ग्रहण करने जा रहे हैं, या तो आरम्भ कर दें या समाप्त कर दें। और एक प्रस्ताव द्वारा या अन्य प्रकार से हम सभा के नेता को अधिकार दें कि वह लार्ड माउण्टबैटन के पास जाकर उनसे गवर्नर-जनरल का पद स्वीकार करने की प्रार्थना करें, ताकि गवर्नर-जनरल के रूप में उनकी नियुक्ति नियम-पूर्वक तथा हमारी प्रार्थना से हुई समझी जाये। साथ ही सभा का नेता उस समय उन्हें अपने 'केबिनेट' (मंत्रिमंडल) के, जोकि वह बनायेगा, सदस्यों के नामों की भी सूचना देगा। यह कार्रवाई रात की होगी। तदन्तर सवेरे 10 बजे हम यहां इस सभा का अधिवेशन करेंगे जिसमें गवर्नर-जनरल उपस्थित होंगे और उस समय यहां जाब्ते का कोई उत्सव किया जायेगा, जिसमें हमें वस्तुतः सत्ता हस्तान्तरित की जायेगी।

***श्री एम.एस. अणेः** पंद्रह को?

***अध्यक्षः** वह तो 14 की आधी रात और 15 के तड़के होगी।

***श्री बालकृष्ण शर्मा** (संयुक्त प्रांतः जनरल): वह हमारा मुक्तिदिवस होगा।

***अध्यक्षः** रात के अधिवेशन के या सवेरे के अधिवेशन के कार्यक्रम का पूरा विवरण अभी हमने तैयार नहीं किया है, किन्तु पंडित जवाहरलाल नेहरू जैसे तथा कुछ अन्य मेम्बरों के परामर्श से, जो यहां मौजूद होंगे, मैं यह विवरण निश्चित करने का विचार करता हूं।

***श्री बी. दास** (उड़ीसाः जनरल): अर्थ व्यवस्था संबन्धी अर्थ कमेटी के सम्बन्ध में क्या निश्चय हुआ है?

***अध्यक्षः** पहले मुझे यह बात पूरी कर लेने दीजिये।

जैसा कि माननीय सदस्य जानते ही हैं, दर्शकों के प्रवेश के सम्बंध में स्थिति यह है कि इस सभा-भवन में हमारे पास स्थान बहुत ही सीमित है। सदस्यों की ओर से मांग की गयी है कि हमें उन्हें अपने अतिथि लाने की, यद्यपि वे अतिथि साधारण शर्तों के अनुसार दिये गये कार्डों पर ही लाये जायेंगे, अनुमति देनी चाहिये। साथ ही इस उत्सव के लिये हमें विदेशों के उन प्रतिनिधियों को जो यहां मौजूद हैं और दूतावासों के प्रतिनिधियों तथा अन्य लोगों को भी आमंत्रित करना आवश्यक

होगा तथा भारत सरकार के कुछ उच्च सिविल मिलिटरी अधिकारियों को भी निमंत्रण देना ही होगा। इसके अतिरिक्त पत्र-प्रतिनिधि भी उस अवसर पर पूरी संख्या में उपस्थित होना चाहेंगे। अतएव उन सभी लोगों के लिये स्थान की व्यवस्था कर सकना, जो आना और उस अवसर पर उपस्थित होना चाहते हैं, बहुत ही कठिन होगा। किन्तु मुझे आशा है कि इस सम्बन्ध में कोई ऐसा कार्यक्रम निश्चित करने का भार सभा हमारे ऊपर छोड़ देगी, जिसके द्वारा हम यथासम्भव अधिक से अधिक लोगों को स्थान देने का समुचित एवं न्याययुक्त प्रबन्ध कर सकेंगे।

***एक माननीय सदस्यः** क्या हर मेम्बर को दो कार्ड दिये जा सकते हैं?

***अध्यक्षः** यदि हम हर मेम्बर को दो कार्ड दें और अन्य किसी को भी आने की इजाजत न भी दें, तो भी हमारे पास पर्याप्त स्थान न होगा।

***श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीयः** कम से कम हर मेम्बर के लिये एक कार्ड।

***अध्यक्षः** चौदह की रात को दर्शकों के पासों के लिये पूर्व की भांति साधारण अनुमति रहेगी।

श्री महावीर त्यागी (संयुक्त प्रांतः जनरल): क्या आप कृपा करके इस सभा को कार्यक्रम का वह अंश जानने देंगे, जिसके अनुसार हमें लार्ड माउण्टबैटन को भविष्य में हमारे गवर्नर जनरल बनने के लिये आमंत्रित करना है? ऐसा इसलिये, क्योंकि इस सभा ने इस प्रश्न पर कभी विचार नहीं किया है और न उसने इस सम्बन्ध में कोई प्रस्ताव ही पास किया है और न वह लार्ड माउण्टबैटन के भारत का गवर्नर-जनरल होने के विचार से ही सहमत हुई है। शेष कार्यक्रम जैसा है वैसे ही चल सकता है।

***अध्यक्षः** यदि माननीय सदस्य इतने उत्सुक हैं, तो मैं यह प्रश्न सभा के विचारार्थ सामने रख दूंगा।

(बहुत-सी आवाजें: नहीं, नहीं)

***अध्यक्षः** कम से कम ऐसा मेरा ख्याल था, किन्तु यदि माननीय सदस्य चाहते हैं तो मैं इसे सभा के विचारार्थ रख सकता हूं।

***श्री शंकर दत्तात्रेय देव** (बम्बईः जनरल): हम नहीं समझे कि प्रश्न क्या है। हमें समझाइये कि क्या बात है?

***अध्यक्षः** मैंने एक कार्यक्रम बनाया था, जिसकी चर्चा मैं अपने वक्तव्य के शुरू में कर चुका हूं। एक सदस्य का कहना है कि अब हमें लार्ड माउण्टबैटन के गवर्नर जनरल होने का प्रश्न लेना चाहिये, क्योंकि सभा ने अब तक इस सम्बन्ध में विचार नहीं किया है। मैंने कहा कि यदि वे उत्सुक हों, तो मैं यह प्रश्न सभा के विचारार्थ रख दूंगा।

(बहुत-सी आवाजें: नहीं, नहीं। यह सभापति के लिये छोड़ दिया जाना चाहिये।)

***पंडित गोविन्द मालवीय** (संयुक्त प्रांतः जनरल): श्रीमान्, प्रश्न की अच्छाई-बुराई का बिल्कुल विचार किये बिना क्या मैं कह सकता हूं कि मुझे मालूम देता है कि माननीय सदस्य का जो मतलब था, यह था कि चूंकि इस मामले का निश्चय सभा से किसी भी प्रकार बिना पूछे–किया गया है, इसलिए हमें इस रीति से काम न लेना चाहिये कि इस 'सभा का नेता' सभा से सीधे वाइसराय के यहां जाये और सभा की ओर से उससे गवर्नर-जनरल का पद स्वीकार करने की प्रार्थना करे। मैं समझता हूं कि माननीय सदस्य का केवल इतना ही मतलब था, न कि यह कि हमें लार्ड माउण्टबैटन को गवर्नर-जनरल न रखना चाहिये।

***श्री महावीर त्यागीः** मेरा मतलब लार्ड माउण्टबैटन के भारत के गवर्नर जनरल स्वीकार किये जाने पर इस सभा की ओर से कोई आपत्ति करने का नहीं था। ऐसा पहले ही किया जा चुका है और यदि इस सभा में कोई ऐसे माननीय सदस्य हैं जिन्हें इस पर आपत्ति हो, तो इस विषय में वे प्रस्ताव रख सकते थे। मैं उस प्रश्न को इस सभा में नहीं उठाना चाहता। जो बात मैं सुझा रहा था, यह थी कि अच्छा होता यदि कार्यक्रम का वह अंश निकाल दिया जाता, जिसके अनुसार जैसा कि आपने बताया है, गवर्नर-जनरल का पद स्वीकार करने के लिये लार्ड माउण्टबैटन को इस सभा की ओर से आमन्त्रित किया जाने को है। मैं समझता हूं कि ऐसा वे पहले ही कर चुके हैं और अच्छा होता यदि यह शिष्टाचार त्याग

दिया जाता, क्योंकि सभा ने इस प्रश्न पर कभी विचार नहीं किया है और यदि सभा के इस प्रश्न पर विचार किये बिना वे आमन्त्रित किये गये, तो यह कोरा शिष्टाचार और मेरे मत से कुछ अनुचित भी होगा। मेरा सुझाव यह था कि योजना में कोई फर्क डाले बिना अथवा उनके गवर्नर-जनरल होने पर कोई आपत्ति किये बिना, यह सभा बद्ध न हो। वे गवर्नर जनरल हैं ही। पद का प्रस्ताव वे स्वीकार भी कर चुके हैं और इस सभा की ओर से किसी प्रकार बद्ध हुये बिना भी उनका वह पद रहेगा।

***पं. गोविन्द मालवीयः** श्रीमान्, मेरी तजवीज है कि इस विषय पर अब और बहस न हो तथा इसे हम सभापति पर छोड़ दें कि जैसा वह सर्वोत्तम समझें, करें।

***श्री तजम्मुल हुसैन** (बिहारः मुस्लिम): श्रीमान्, इस सम्बन्ध में नियमित रूप में यह एक प्रस्ताव उपस्थित करने के लिये क्या मैं आपकी अनुमति प्राप्त कर सकता हूं?

यह कि स्वाधीनता-दिवस-समारोह के सम्बन्ध में माननीय अध्यक्ष द्वारा तैयार किये गये कार्यक्रम को यह सभा पूरे का पूरा स्वीकार करती है।

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता कि मत लेने के लिये इस प्रकार कोई प्रस्ताव उपस्थित करने की आवश्यकता है। मैं समझता हूं कि अपने कहे अनुसार मैं कार्यक्रम का निश्चय कर लूंगा और उसका विवरण भी मैं समझ लूंगा।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या आप इतनी कृपा करेंगे कि आदेश दे दें कि इस ऐतिहासिक अवसर पर इस 'परिषद्' के सदस्य कम से कम एक-एक दर्शक को प्रवेश दिला सकने के अधिकार से वंचित न किये जायेंगे?

***अध्यक्षः** यह स्थान पर निर्भर करता है। जैसा कि मैं कह चुका हूं, हम अधिक से अधिक लोगों के लिये स्थान उपलब्ध करने की पूरी से पूरी कोशिश करेंगे, किन्तु यदि हम ऐसा न कर सके, तो हम ऐसे उपाय से काम लेंगे कि सब सदस्यों का न्यायोचित ध्यान रखा जा सकेगा।

***एक माननीय सदस्यः** श्रीमान्, क्या मैं जान सकता हूं कि हम लोग यहां किस समय आयें?

***अध्यक्षः** आपको 14 तारीख की रात को यहां आना है। ठीक समय की घोषणा मैं बाद में करूंगा। वह आधी रात का समय होगा।

***श्री एच.वी. कामतः** हर सदस्य को राष्ट्रीय झण्डा भेंट किये जाने की बात है; यदि वह 15 अगस्त से पहले दिया जा सके, तो हम विशेष आभारी होंगे।

***अध्यक्षः** प्रत्येक सदस्य एक झण्डा खरीद ले।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान् आप द्वारा भेंट।

***अध्यक्षः** यह ऐसा मामला है, जो हमारे विचार करने का है। हम प्रत्येक सदस्य को एक झण्डा देने का वचन नहीं दे सकते। इस समय यह व्यावहारिक नहीं मालूम देता।

***श्री अजित प्रसाद जैन** (संयुक्त प्रांतः जनरल): आपने कहा है कि आप ऐसी योजना तैयार करेंगे, जिसके अनुसार दर्शकों को न्यायोचित रीति से सभा में प्रवेश दिया जा सकेगा। मैं वह समय जानना चाहता हूं जब आपकी यह योजना हम लोगों को मालूम हो सकेगी।

***अध्यक्षः** एक-दो दिन में हम उक्त योजना तैयार कर लेंगे और समाचार-पत्रों में उसकी घोषणा कर दी जायेगी।

***श्री महावीर त्यागीः** श्रीमान्, इस सम्बन्ध में क्या मैं एक सुझाव रख सकता हूं? चूंकि आप कहते हैं कि अनेक सम्मानित उच्च व्यक्तियों को निमंत्रण देना है और हम लोग भी अपने मित्रों को यह शुभ उत्सव दिखाने को उत्सुक हैं, इसलिये मेरा सुझाव है कि यह उत्सव यहां करने के बजाय हम लोग एक बार फिर पुराने किले में या अन्य ऐसे ही स्थान में, जहां भारी उत्सव का आयोजन किया जा सके और भारी संख्या में लोगों के लिये स्थान मिल सके, क्यों न एकत्र हों? भारत के बहुतेरे लोग, जो दिल्ली में नहीं हैं, समारोह देखने के लिये बाहर से आ सकते हैं। अतएव मेरा सुझाव है कि हम इसे एक विशाल समारोह बनायें और उसे किसी ऐसी जगह करें, जहां हमें पर्याप्त स्थान उपलब्ध हो सके।

***अनेक माननीय सदस्यः** नहीं, नहीं।

***अध्यक्षः** चूंकि हम अपने अधिवेशन इस भवन में करते आये हैं, अतएव उचित ही है कि यह समारोह भी हम इसी भवन में करें।

(जी हां, जी हां)

***एक माननीय सदस्यः** मेरा प्रस्ताव है कि अधिक दर्शकों के लिये स्थान की व्यवस्था करने के लिये साथ के इन कमरों का भी उपयोग होना चाहिये।

***अध्यक्षः** हम इंच-इंच जगह का भी उपयोग करेंगे।

मैं आपसे एक बात और कहना चाहता था। 14 की रात और 15 के सबेरे के लिए हमने अगले अधिवेशन की घोषणा की है। यथा-समय कार्यालय से सूचनायें भेजी जायेंगी। सम्भव है कि सदस्यों को ठीक समय से ये सूचनायें प्राप्त न हों। अतएव वे इसे ही सूचना समझ सकते हैं और समाचार-पत्रों में जो प्रकाशित हो उसे भी वे इस सम्बन्ध में अपने प्रति सूचना ही समझ सकते हैं। उन्हें नियमित रूप में सूचनायें मिलने की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है।

अब हमारी बैठक 14 अगस्त तक के लिये स्थगित होती है।

इसके बाद परिषद् गुरुवार 14 अगस्त, सन् 1947 ई. तक के लिये स्थगित हो गयी।